ISSN 2321-4945

UGC CARE LIST approved Research Journal

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

वर्ष : 72 ● अंक : 1 ● अप्रैल : 2022

रामधारी सिंह 'दिनकर'

(1908–1974)

खेल रहे हिलमिल घाटी में, कौन शिखर का ध्यान करे ?
ऐसा बीर कहाँ कि शैलरुह फूलों का मधुपान करे ?
लक्ष्यवेध है कठिन, अमा का सूचि–भेद्य तमतोम यहाँ ?
ध्वनि पर छोडे तीर, कौन यह शब्द–वेध संधान करे ?
'सूली ऊपर सेज पिया की', दीवानी मीरा ! सो ले,
अपना देश वही देखेगा जो अशेष बलिदान करे।
जीवन की जल गयी फसल, तब उगे यहाँ दिल के दाने;
लहरायेगी लता, आग बिजली का तो सामान करे।
सबकी अलग तरी अपनी, दो का चलना मिल साथ मना;
पार जिसे जाना हो वह तैयार स्वयं जलयान करे।
फूल झडे, अलि उड़े, वाटिका का मंगल–मधु स्वप्न हुआ,
दो दिन का है संग, हृदय क्या हृदयों से पहचान करे ?
सिर देकर सौदा लेते हैं, जिन्हें प्रेम का रंग चढ़ा;
फीका रंग रहा तो घर तज क्या गैरिक परिधान करे ?
उस पद का मजीर गूँजता, हो नीरव सुनसान जहाँ;
सुनना हो तो तज वसन्त, निज को पहले वीरान करे।
मणि पर तो आवरण, दीप से तूफाँ में कब काम चला ?
दुर्गम पंथ, दूर जाना है, क्या पन्थी अनजान करे ?
तरी खेलती रहे लहर पर, यह भी एक समाँ कैसा ?
डाँड़ छोड़, पतवार तोड़ कर तू कवि ! निर्भय गान करे।

शब्द-वेध/ 'हुंकार' से

RNI NO. ASSBIL/2009/31008 ISSN : 2321-4945

एक हृदय हो भारत जननी

द्विभाषी राष्ट्रसेवक

भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक शोध-पत्रिका

UGC CARE Listed Research Journal

वर्ष : 72 (आर.एन.आई. वर्ष : 15) **अंक : 1** **अप्रैल : 2022**

प्रधान संपादक
डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

संपादक
प्रो. मोहन
हिंदी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय
दिल्ली-1

कार्यकारी संपादक
रामनाथ प्रसाद
प्रभारी साहित्य सचिव
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी

DWIBHASHI RASTRASEWAK : A Bilingual (Hindi & Assamese) Monthly Research Journal of Languages, Literature Society, Art and Culture, added by Central Hindi Directorate, Govt. of India and Published by Asom Rastrabhasha Prachar Samiti, Rupnagar, Guwahati-781032.

प्रकाशक :
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी-32

संपादकीय कार्यालय :
संपादक, द्विभाषी राष्ट्रसेवक
असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, गुवाहाटी-32
फोन : 9101541395, 9101541380
ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

सदस्यता शुल्क :
प्रति अंक : रु.50/- (व्यक्तिगत)
प्रति अंक : रु.100/- (संस्थागत)

अलंकरण : रति कांत कलिता

आवरण पृष्ठ : असम का प्रमुख त्योहार रंगाली बिहू

सर्वाधिकार : **असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी-32**

मुद्रक :
ग्राफिक्स, गुवाहाटी-3

'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' में प्रकाशित रचनाओं के विचारों से असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का सहमत होना आवश्यक नहीं है। प्रकाशित सामग्री के उपयोग हेतु प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।

परामर्श मंडल

श्री भारतभूषण महंत
कार्याध्यक्ष, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति
गुवाहाटी (असम)

प्रो. आर.एस. सर्राजु
सम-कुलपति, हैदराबाद विश्वविद्यालय
तेलंगाना-500046

प्रो. प्रदीप के शर्मा
कुलसचिव, उच्च शिक्षा शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा
टी. नगर, चेन्नई (तमिलनाडु)

प्रो. दीपक प्रकाश त्यागी
हिंदी विभाग
दीन दयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

प्रो. दिलीप कुमार मेधि
प्रोफेसर, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अमूल्य चंद्र बर्मन
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
कॉटन विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

डॉ. अच्युत शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिंदी विभाग
गौहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी (असम)

अनुक्रम

हिंदी विभाग

- संपादकीय — 5
- गाँधी जी का सत्यानुसंधान — ✍ डॉ. ऋता दीक्षित — 7
- कीर्तन घोषा और सूरसागर के गोपी-उद्धव संवाद का तुलनात्मक अध्ययन — ✍ डॉ. जयश्री काकति — 11
- समकालीन हिंदी साहित्य में भारतबोध विशेषत: रघुवीर सहाय की कविता 'कैमरे में बंद अपाहिज' के संदर्भ में — ✍ डॉ. संतोष कुमार चतुर्वेदी — 15
- समकालीन हिंदी कविता और धूमिल — ✍ सत्यंवत यादव — 19
- बौद्ध धर्म का क्रमिक विकास : बुद्ध, बौद्ध एवं नवबौद्ध — ✍ डॉ. संजय यादव — 23
- असमीया उपन्यास की पृष्ठभूमि — ✍ स्मिता रजक — 27
- विचित्र नाटक में युद्ध वर्णन एवं ऐतिहासिकता — ✍ डॉ. ज्योति कौर — 31
- जलछबि : स्त्री जीवन की एक यथार्थ दस्तावेज — ✍ सिराजुल हक — 38
- यह मुलक हमारा भी है क्या : तस्वीरन — ✍ सत्येंद्र पाण्डेय — 43
- महात्मा गाँधी के पूर्वज : एक प्रामाणिक अध्ययन — ✍ सूर्य प्रकाश — 48
- कहानी/कफन — ✍ प्रेमचंद — 53

অসমীয়া বিভাগ

- চেতনা স্রোতৰ আলোকত ভূপেন্দ্র নাৰায়ণ ভট্টাচার্যৰ গল্প — ✍ ড° অন্বেশ্বৰ গগৈ, ✍ শ্রী গীতাশ্রী শইকীয়া — 59
- নৱকান্ত বৰুৱাৰ শিশু সাহিত্য — ✍ বিকাশ দাস — 73
- ভাসৰ 'স্বপ্নবাসৱদত্তা' নাটকৰ প্রথম অংকত ব্যৱহৃত প্রাকৃ সম্ভাষণ ঃ এক অধ্যয়ন — ✍ দীপামণি বৈশ্য — 77
- অনুৰাগ আৰু এটা ছাতি (কবিতা) — ✍ ৰাজুমণি শইকীয়া — 85

संपादकीय

हिंदी का प्रचार : एक चिंतन

क्या पिछले 70 वर्षों में हिंदी के विस्तार और गति से आश्वस्त हुआ जा सकता है ? इस अवधि के दौरान क्या देश के सभी प्रांतों में हिंदी के प्रचार-प्रसार में कोई अपेक्षित गति पैदा कर पाए हैं ? क्या दक्षिण और पूर्वोत्तर में शैक्षणिक या अकादमिक स्तर पर प्राप्त उपलब्धियों से आश्वस्त हो सकते हैं ? उत्तर तो यही होगा कि हिंदी के प्रचार-प्रसार के पीछे साम्राज्यवादी मंसूबे या महत्वाकांक्षी इरादे कभी नहीं रहे। विश्व के भाषाई मानचित्र पर यदि भाषाओं के विस्तार का आकलन किया जाए तो पता चलेगा कि एशिया और अफ्रीका समेत कई दक्षिणी अमेरिकी देशों में युद्धोन्मादी एवं उपनिवेशवादी देशों ने अपनी दमनकारी नीतियों और शक्ति के बल पर अपनी-अपनी भाषाओं को विजित देशों पर बर्बरतापूर्वक थोपा। जो सुदूर बसे क्षेत्रीय जनजाति के लोग तब अपनी भाषाएँ और पहचान बनाने में समर्थ रहे, सर्वग्राही भूमंडलीकरण के दौर में, अब वे अस्तित्व की रक्षा में जुट गए हैं।

भारत जैसे बहुभाषिक, बहुजातीय और बहुसांस्कृतिक देश ने अपनी स्वतंत्रता के बाद से ही केंद्र और विभिन्न राज्यों की भाषाओं के साथ समुचित संतुलन एवं तालमेल बनाए रखा। हिंदी की केंद्रीय स्थिति, निश्चय ही बहुभाषिक भारत की बहुसंख्यक आबादी के बीच और हिंदीतर भाषा-भाषियों के बीच सीधे संवाद की भाषा के तौर पर रही है। यह संख्या सत्तर-बहत्तर प्रतिशत तक बढ़ गई है, ऐसा बताया जा सकता है। यानी दो-तिहाई से अधिक लोग हिंदी बोलते-समझते हैं। पठन-पाठन की दृष्टि से भी, भारत के एक सौ अस्सी विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर स्तर और इसके बाद हिंदी में शोध करने की उपयुक्त व्यवस्था है। संचार माध्यमों की प्रगति के कारण भी पूर्वांचल-अरुणाचल और मिजोरम तक तथा सुदूर उत्तर लेह लद्दाख आदि क्षेत्रों में हिंदी ने अपनी जड़ें जमा ली हैं। तो भी, यह देखना जरूरी होगा कि एक सौ तीस करोड़ भारतवासियों में से, उपर्युक्त प्रतिशत के अनुसार लगभग चालीस करोड़ आबादी तक हिंदी अभी भी अपनी पहुँच नहीं बना पाई है। इस प्रश्न का उत्तर देने की जिम्मेदारी सरकार, शिक्षा व्यवस्था और हिंदी स्वैच्छिक संस्थाओं की है।

हिंदी के बारे में अक्सर यह कहा जाता है कि इसे किसी भी हिंदीतर राज्य पर थोपा नहीं जाएगा और यह सच भी है। इसके दुष्परिणाम को हिंदी कई बार झेल भी चुकी है और इसे अपने आगे बढ़ते कदम को पीछे हटा लेना पड़ा है। हिंदी के प्रचार-प्रसार में जिन हिंदी सेवियों - महात्मा गांधी, बाल गंगाधर तिलक, पुरुषोत्तम दास टंडन, केशवचंद्र सेन, विनोबा भावे, राजगोपालाचारी, बाबा राघव दास, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि ने अपना जीवन सौंप दिया, उन्होंने स्वतंत्रता पूर्व और बाद में संख्या बल के आधार पर हिंदी को कभी जबर्दस्ती थोपने का उद्यम नहीं किया। यही नहीं, जब 1937-38 में चक्रवर्ती राजगोपालाचारी ने अति उत्साह में तत्कालीन मद्रास प्रेसीडेंसी में अनिवार्य तौर पर लागू करना चाहा तो स्थानीय लोगों का गुस्सा भड़क उठा। पुरुषोत्तम दास टंडन ने इस अवांछित घोषणा की शिकायत तत्काल महात्मा गांधी जी से की। कहा कि यह हिंदी की प्रकृति के सर्वथा विरुद्ध है। भारत में प्रकाशित होने वाले कई अखबारों ने इस घटना की आलोचना की।

संपूर्ण भारत में हिंदी और हिंदीतर प्रदेशों में हिंदी की उपस्थिति के कमोबेश प्रतिशत अक्सर आँकड़ों द्वारा दर्ज किए जाते हैं, लेकिन भारतेंदु युग और स्वाधीनता आंदोलन के दौर से ही इसे 'राष्ट्रभाषा', स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 'राजभाषा' और फिर 'संपर्क भाषा' के तौर पर महिमामंडित, तो कभी तर्क-वितर्क द्वारा परिभाषित या सीमित किया जाता रहा है। एक ओर इसे 'जनभाषा' और 'आम भाषा' कहा गया तो दूसरी ओर 'विश्वभाषा' कहकर गौरवान्वित किया जा रहा है।

यह विडंबना है कि जब-जब सांस्कृतिक, ऐतिह्य, सामाजिक और राष्ट्रीयता-जैसे प्रश्नों पर विमर्श किया जाता रहा, तब तक हिंदी को क्षुद्र राजनीति और क्षेत्रीय आकांक्षाओं से जोड़कर देखा जाता रहा, परिणामत: इसके उड़ान भरते पंख कतरे गए। अल्पसंख्यक और बहुसंख्यक भाषा-भाषियों के इस प्रायोजित टकराव से अगर सबसे अधिक लाभ किसी एक विदेशी भाषा को मिला तो वह थी - अंग्रेजी। इसकी जड़ों पर आज तक कोई प्रश्न नहीं उठाया।

बावजूद इन कठिनाइयों के हिंदी की संघर्ष यात्रा अपनी समस्त गतिविधियों के साथ निरंतर आगे बढ़ती रही। इस गतिशील यात्रा में, हिंदी की दर्जनों समर्पित संस्थाएँ - चाहे वे उत्तर भारत की हों या दक्षिण भारत की, पूर्वोत्तर की हों, निरंतर सक्रिय बनी रहीं। जहाँ तक भारतीयों और हिंदी जनमानस की बात है, उनके लिए हिंदी एक ही साथ राष्ट्रभाषा है, राजभाषा है और संपर्क भाषा भी है। यह संस्थागत शिक्षण का माध्यम है तो आस्थागत मूल्यों का वाहक भी। यह एक ओर बाजार, विज्ञापन और विपणन की भाषा है तो मनोरंजन, पर्यटन और तीर्थाटन की भाषा भी।

जैसा कि आपको मालूम है कि इन सारे असमंजस और बाधाओं को पार करते हुए असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति पिछले सन् 1951 से राष्ट्रसेवक को निरंतर प्रकाशित करती आई है। परंतु सन् 2009 में आरएनआई द्वारा नए सिरे से पंजीकरण को लेकर कुछ तकनीकी कारणों से पत्रिका के नामकरण में परिवर्तन/परिवर्धन भी करना पड़ा। वही राष्ट्रसेवक अब 'द्विभाषी राष्ट्रसेवक' के रूप में प्रकाशित हो रही है। यह पत्रिका 71वें वर्ष पूर्ण करने के बाद अब 72वें वर्ष में कदम रख रही है। देश की भावात्मक एकता, भाषाई समन्वय एवं सामासिक संस्कृति के सुदृढ़ीकरण और संवर्धन में यह पत्रिका यदि सहायक सिद्ध होती है तो असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति अपना श्रम सार्थक मानेगी।

हमारा यह मानना है कि पूरे भारतीय भाषाओं के विकास में ही हिंदी का विकास निहित है। लिहाजा क्षेत्रीय भाषाओं का भी विकास होना जरूरी है। इसी उद्देश्य से हमने प्रारंभ से ही पत्रिका में 'हिंदी' के साथ-साथ प्रदेश की प्रमुख भाषा 'असमीया' को भी तरजीह दी है। वर्तमान में देश की नई शिक्षा नीति भी यही कहती है।

असम प्रकृति की गोद में बसा एक मनोरम राज्य है। यहाँ की जलवायु बहुत अच्छी है। यहां की सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराएँ अतुलनीय व गौरवशाली हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से भारतवर्ष के साथ असम का संबंध महाभारतकाल से ही देखने को मिलता है। दूसरी ओर, असम के सामाजिक व सांस्कृतिक उत्थान एवं नवनिर्माण में महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव के योगदान को सदैव याद किया जाता है। वस्तुत: श्रीमंत शंकरदेव ने पूरे असम और असमीया समाज को एक नई दृष्टि, एक नई चेतना और एक नई दिशा दी है, जिसका अनुसरण करते हुए आज पूरा असमीया समाज भाषा, कला, साहित्य, संस्कृति के अलावा स्वच्छता, सेवा, स्नेह, सौंदर्य, आतिथ्य आदि हर दिशा में अग्रणी रहा है।

अंत में, इस अंक के सभी मान्य लेखकों को, उनकी रचनात्मक सहयोग और सद्भाव के लिए हृदय से धन्यवाद एवं कृतज्ञता प्रदान करते हैं। आशा है यह अंक भी आप को पसंद आएगी। ❑

आलेख

गाँधी जी का सत्यानुसंधान

✍ डॉ. ऋता दीक्षित

सारांश :

मोहनदास करमचांद गाँधी, जिन्हें 'महात्मा' जैसा पावन पद प्राप्त हुआ, इसके मूल में वस्तुत: बापू की सत्य-साधना ही है। सत्य एवं अहिंसा का ऐसा पुजारी संपूर्ण विश्व के लिए अनुकरणीय बना, यह भारत के लिए गौरव की बात है। राजनीति के पंक में गाँधीजी के विचार, विषेशत: उनका 'सत्यानुसंधान' किसी भी मानव ही नहीं, राष्ट्र के लिए भी सर्वथा श्रेयष्कर है। महात्माजी की संपूर्ण विश्व में स्वीकार्यता इसका पुष्ट प्रमाण है।... और सत्य की शक्ति को देखिए, भारत से सुदूर दक्षिण अफ्रीका में उनका आंदोलन स्फूर्ति का अद्‌भुत कारक सिद्ध हुआ। गाँधीजी की यह मान्यता कितनी महत्वपूर्ण है कि सत्य के मार्ग में सफलता-असफलता का आकलन व्यर्थ है। इस संदर्भ में संस्कृत उपनिषदों का मर्म भी सर्वथा ग्राह्य है। सत्य को ईश्वर मानने का अटूट विश्वास भी बापू के 'सत्यानुसंधान' का आभूषण है।

संकेताक्षर : महात्मा गाँधी, सत्यानुसंधान, उपनिषद, दक्षिण अफ्रीका, राजनीतिक चिंतन।

शोधपत्र :

गाँधीजी का संपूर्ण जीवन सत्य के अनुसंधान और आचरण से ओत-प्रोत था। भारतीय राजनीति में ऐसा व्यक्तित्व अवतरित हुआ, जिसने संपूर्ण विश्व को प्रभावित और आश्चर्यचकित कर दिया, क्योंकि वे सच्चे सत्यान्वेषी और सत्यसाधक थे। उनकी दृष्टि में सत्य ही ईश्वर था और ईश्वर ही सत्य था। उन्होंने प्रतिपल सत्य को ही जिया। वे सचमुच महात्मा थे।

मुण्डकोपनिषद में कहा गया है, ''**सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा।**''[1] अर्थात आत्मतत्व की प्राप्ति सत्य से ही हो सकती है। गाँधीजी ने अपने सत्याचरण से यही नहीं, उससे भी उच्चतर लक्ष्य को प्राप्त कर लिया था, भले ही वह लक्ष्य लौकिक था। स्वातंत्र्य समर का ऐसा अद्‌भुत सेनानी, जिसने सत्य रूपी ब्रह्मास्त्र से अन्याय, अत्याचार, हिंसा जैसे दुर्भावों को परास्त कर दिया। मुण्डकोपनिषद में आगे कहा गया है-

''सत्यमेव जयति नानृतं,
सत्येन पन्था वितो देवयान:।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा
यत्र तत् सम्यस्य परमं निधानम्।।''[2]

अर्थात सत्य की ही विजय होती है, झूठ की नहीं। परमात्मा सत्य स्वरूप है; अत: उसकी प्राप्ति के लिए मनुष्य में सत्य की प्रतिष्ठा होनी चाहिए। परमात्मा प्राप्ति के लिए तो सत्य अनिवार्य साधन है ही; जगत में दूसरे सब कार्यों में भी अंतत: सत्य की ही विजय होती है। जो लोग मिथ्या-भाषण, दंभ और कपट से उन्नति की आशा रखते हैं, वे अंत में उनका बुरी तरह विनाश होता है। मिथ्या-भाषण और मिथ्या आचरणों से जो सत्य का आभास है, जिसके कारण दूसरे लोग उसे किसी अंश में सत्य मान लेते हैं, उसी में कुछ क्षणिक लाभ-सा हो

जाता है, परंतु उसका परिणाम अच्छा नहीं होता। अंत में सत्य, सत्य ही रहता है और झूठ, झूठ ही। इसी से बुद्धिमान मनुष्य सत्य भाषण और सदाचार को ही अपनाते हैं, झूठ को नहीं, क्योंकि जिनकी भोग-वासना नष्ट हो गई है, ऐसे पूर्णकाम ऋषि लोग जिस मार्ग से वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ इस सत्य के परमाधार परब्रह्म परमात्मा स्थित है, वह देवयान मार्ग अर्थात उन परमदेव परमात्मा को प्राप्त करने का साधन रूप मार्ग सत्य से ही परिपूर्ण है, उसमें असत्य-भाषण और दंभ, कपट आदि असत्-आचरणों के लिए स्थान ही नहीं है। मुण्डकोपनिषद के इस वक्तव्य को जीवन-सूत्र मान लिया जाए तो महात्मा गाँधीजी का संपूर्ण जीवन उनका सर्वश्रेष्ठ भाष्य है। यह सिद्धांत है, तो बापू का जीवन इसका सफलतम एवं प्रमुख प्रयोग है।

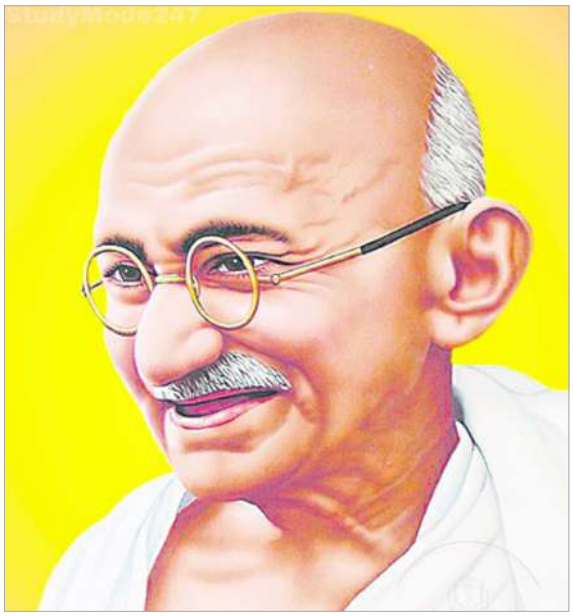

ईश्वर को सत्य रूप में गाँधीजी ने स्वीकार किया। ईश्वर अनाम है, अनादि है और इसको विभिन्न नाम दिए जा सकते हैं। ''अगर मानव प्राणी के लिए ईश्वर का संपूर्ण वर्णन करना संभव हो तो मैं इस निश्चय पर पहुँचता हूँ कि मेरे अपने लिए तो ईश्वर सत्य है। सत्य शब्द ही उसका उत्तम वाचक है, परंतु दो वर्ष पूर्व मैं एक कदम आगे बढ़ा। मैंने कहा कि न केवल ईश्वर सत्य रूप है बल्कि सत्य ही ईश्वर है।''[3] जिस ईश्वर को उन्होंने सत्य के रूप में प्रस्तुत किया, उस सत्य को ही जानना आवश्यक है। संपूर्ण सत्य की खोज एक कठिन तपस्या है। सत्य की पूर्णता में ज्ञान (चित्त) का समावेश है, जो कि अंत में आनंद का स्त्रोत है। ईश्वर को गाँधीजी इसीलिए सत्-चित्-आनंद की संज्ञा देते थे, क्योंकि उसमें स्वयं सत्य का निवास है, सत्य के साथ चित् और आनंद है।

गाँधीजी ने जीवन पर्यंत सत्य को सर्वोपरि माना है। धर्म, शास्त्रों और आचरण की कसौटी भी धर्म ही है। उनकी अपनी यह निश्चित धारणा थी कि जो सत्य की कसौटी पर खरा न उतरे, वह सब कुछ त्याज्य है। सत्य, सत् शब्द की व्युत्पत्ति है। इसका अर्थ है 'होना'। सत्य के अतिरिक्त कुछ भी स्थायी नहीं है। सत्य में ऊँचे ज्ञान का भाव केंद्रित है। ''सत्य का सिद्धांत केवल मात्र भाषण के सत्य तक सीमित नहीं है, इसमें क्रिया का सत्य भी निहित है। विचार या चिंतन का सत्य भी समान रूप में महत्वपूर्ण है।''[4] इस सत्य की प्राप्ति की खोज में गाँधीजी ने अपने जीवन का होम किया था। सत्य की खोज के इस रास्ते में उन्होंने कभी किसी को सत्य विशेष के प्रति संकेत नहीं किया, क्योंकि वह इसे परिस्थितियों के संदर्भ में बदलता हुआ नहीं मानते थे। ''संक्षेप में हमारी समस्त क्रियाएँ सत्य के चारों तरफ केंद्रित रहनी चाहिए। इस आधारभूत विश्वास के कारण गाँधीजी सत्य के अभ्यास में पूर्ण हुए। वास्तव में उन्होंने अपने राजनीतिक आंदोलन को सत्याग्रह आंदोलन की संज्ञा दी। यह आंदोलन स्वयं सत्य के पथ को प्राप्त करने की आंतरिक इच्छा-शक्ति का परिणाम है।''[5]

गाँधीजी के अनुसार सत्य अंतरात्मा की वाणी है। मनुष्य एक-दूसरे से भिन्न सत्य की कल्पना कर सकते हैं। जो सत्य एक मनुष्य के लिए है, वह दूसरे के लिए अवश्य ही भिन्न सत्य की कल्पना कर सकते हैं। जो सत्य एक मनुष्य के लिए है, वह दूसरे के लिए अवश्य भिन्न अर्थवाला हो सकता है। सत्य की अनुभूति में भिन्न-भिन्न विचार हो सकते हैं, किंतु सत्य की जानकारी का माध्यम भी तो कुछ शर्तों पर आश्रित है। नियमों तथा

अस्तु, महात्माजी का जीवन राजनीति के पंक में शोभायमान पंकज है। संपूर्ण विश्व में इतना उच्चादर्श वाला राजनेता 'न भूतो, न भविष्यति'। इसी सत्य की शक्ति से उन्होंने न केवल भारतभूमि को स्वातंत्र्य-वरदान दिलवाया, अपितु दक्षिण अफ्रीका को भी नवप्रभात और नवप्रकाश प्रदान किया।

साधनों की आवश्यकता है, उनमें ब्रह्मचर्य का पालन भी है। अपरिग्रह, अहिंसा, दरिद्रता से इनके संगी हैं। यदि इसके पालन करने वाला सत्य ही खोज में बैठता है तो निश्चित ही उसकी अंतरवाणी में सत्य वास करता है, किंतु देखने में आता है कि ऐसे कठोर साधन-पथ पर चले बिना ही सत्य की अनुभूति का दावा करने वाले लोग संसार के साथ अन्याय कर रहे हैं।

सत्य के मार्ग पर चलने में सफलता और असफलता के भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए। सत्य के साथ सफलता निश्चित है। यदि कहीं हम असफल भी हुए तो वह असफलता हमारे अपने किसी कारण से हो सकती है। हो सकता है कि सत्य की साधना में साधक से कहीं कोई भूल हो गई हो। ''सामान्य श्रेणी का सत्य धारण करके हम कोई परिणाम प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करें और वह परिणाम प्राप्त न हो तो दोष सत्य का नहीं, हमारा है।''[6] सत्य के पालन में कभी दुराग्रह नहीं होता। सत्य में कहीं भी अंधानुकरण नहीं है। सत्य का पालन करने वाला सदैव स्वयं कष्ट सह सकता है, दूसरों के द्वारा किए गए विश्वासघात को सहन कर सकता है, किंतु सत्य का पालक इन क्षणिक दुविधाओं से अपने मार्ग को नहीं बदल सकता। सत्य में पराश्रित रहने का भाव नहीं होता। गाँधीजी का सत्य स्वयं एक स्वावलंबी का सत्य था, जिसमें बल स्वयं शक्ति और द्योतक था। उदारता नम्रता की प्रतीक थी। ''नम्रता के बिना सत्य दिखावा अहंकारपूर्ण होगा। सत्य का प्रणेता मनुष्य परीक्षाओं से गुजर कर शुद्ध और नम्र बन जाता है।''[7]

कभी-कभी सत्य की अनुभूति प्राप्त व्यक्ति में अप्रिय सत्य बोलने की बात आ जाती है। गाँधीजी इस अप्रिय शब्द को सत्य के साथ जोड़ना उपयुक्त अनुभव नहीं करते। ''सत्य स्वयं की पूर्ण शक्तिमान है और जब कड़े शब्दों द्वारा उसकी पुष्टि का प्रयत्न किया जाता है, तब वह अपमानित होता है।''[8] उनकी धारणा में सत्य के प्रवक्ता का मृदुभाषी होना परमावश्यक है। इस मृदुभाषी सत्य से संसार के अहित की कल्पना नहीं की जा सकती। गाँधीजी ने यह तो अनुभव किया कि वह सत्य के निकट पहुँचने के लिए प्रयत्नशील हैं, किंतु उन्होंने कभी यह अधिकारपूर्ण रूप से नहीं कहा कि वह पूर्ण सत्य को पा चुके हैं। इसलिए उन्होंने परिस्थितिजन्य अनुभूत सत्य को निहारा, प्रयोग किया और आवश्यकता और परिस्थिति के संदर्भ में उसे बदल दिया। ''सत्य जहाँ सूर्य के समान ताप देता है, वहीं प्राणों का सिंचन भी करता है। सूर्य यदि एक घड़ी भर के लिए भी तपना बंद कर दे तो यह सृष्टि जड़वत बन जाए। इसी प्रकार सत्य रूपी सूर्य क्षण भर के लिए न तपे तो इस संसार का नाश हो जाए।''[9]

सत्य की आराधना में गाँधीजी ने हृदय परिवर्तन को स्वीकार किया। वह यह स्वीकार करते थे कि यदि सत्य हृदय में धारण किया है, उसका आचरण किया है तो निश्चित ही दूसरे व्यक्ति का हृदय परिवर्तन होगा। अँग्रेजों के विशाल साम्राज्य के संबंध में उनकी यह मान्यता थी। सत्य गोपनीयता से घृणा है। इसका आशय यह है कि सत्य के साधन को अपनी किसी घटना या योजना को गुप्त रखकर चलना उचित नहीं है, लेकिन कभी-कभी सत्य के साधक को भी सत्य छुपाने में अपने धर्म की प्राप्ति अनुभूत होती है। जीवन में हजारों ऐसे संदर्भ आ सकते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से बीमार के सम्मुख उसकी अत्यधिक बीमारी को छुपाना इसी संदर्भ का उदाहरण हो सकता है, लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं है कि हम सत्य की साधना से विरत हो गए या सत्य पर पर्दा डाल रहे हैं। सत्य के पास अमोघ शक्ति

है। सत्य में धर्म की सच्ची निष्ठा निहित है। इस निष्ठा की परिपूर्ति के लिए ही सत्य के साधक को अपने दोषों पर परदा डालने की किंचित भी आवश्यकता नहीं।

सत्य को विचारों से अभिव्यक्त करना भर पर्याप्त नहीं है। सत्य तो मन, चिंतन और आचरण की वस्तु है। ''मनुष्य जब सत्य का आचरण करता है, तब उसे बोलने की इच्छा ही नहीं होती। सत्य आचरणी मनुष्य कम-से-कम बोलता है। इसलिए आचरण से भिन्न या उससे अधिक सच्चा धर्म प्रचार दूसरा नहीं है।''[10] आचरणगत सत्य को किसी दूसरी अभिव्यक्ति को खोजना नहीं होता, क्योंकि सत्य में अपार शक्ति होती है। सत्य स्वयं में पूर्ण होता है, लेकिन सापेक्ष सत्य में ऐसी क्षमता नहीं होती, पर सापेक्ष सत्य भी सत्य के निकट होता है। सत्य जहाँ मनुष्य को गोपनीयता से मुक्ति दिलाता है, वहीं वह उसके दमन का परिहार करता है।

गाँधीजी का सत्य, सत्य के शोधक को रजकण से भी नम्र कर देता है। सत्य की इस महान साधना में जीवन पर्यंत लगे गाँधीजी यह स्वीकार कर चलते हैं कि सच्चा साधक होने के कारण अनुमान और निर्णय त्रुटिपूर्ण भी हो जाए तो उनमें सुधार कर लेना चाहिए। गाँधीजी ने वकालत के व्यावहारिक जीवन में भी इसी सत्य को धारण किया, राजनीति के संसार में इसी के फलितार्थ उन्होंने भोगे और जीवन को सत्य के जितना अधिक निकट किया, उतना ईश्वर के निकट अपने को पाया है।

अस्तु महात्माजी का जीवन राजनीति के पंक में शोभायमान पंकज है। संपूर्ण विश्व में इतना उच्चादर्श वाला राजनेता 'न भूतो, न भविष्यति'। इसी सत्य की शक्ति से उन्होंने न केवल भारतभूमि को स्वातंत्र्य-वरदान दिलवाया, अपितु दक्षिण अफ्रीका को भी नवप्रभात और नवप्रकाश प्रदान किया। सच ही है -'न हि सत्यात् परो धर्म:'।

सत्य सिद्धांत है, बापू प्रयोग हैं, सत्य सूत्र है, बापू उसके भाष्य हैं। कविवर रवींद्रनाथ ठाकुर ने गाँधीजी के लिए ठीक ही कहा है कि ''पॉलिटीशियन लोगों की चतुराई के लिए हम उनकी प्रशंसा कर सकते हैं, लेकिन भक्ति नहीं कर सकते। भक्ति तो हम कर सकते हैं महात्मा गाँधी की, जिनकी साधना सत्य की साधना है।''[11]❑

संदर्भ :

1. मुण्डकोपनिषद: 3.1.5।
2. वही, 3.1.5
3. यंग इंडिया: 31 दिसम्बर 1931।
4. धावन गोपीनाथ : दि पॉलिटिकल फिलोसॉफी ऑफमहात्मा गाँधी: पृ 58।
5. यूनिथान, टी.के.एन.: गांधी एण्ड फ्री इंडिया: पृ. 40।
6. सम्पूर्ण गाँधी वाङमय: खण्ड 8 पृ. 60।
7. यंग इंडिया: 25 जून 1925।
8. हिन्दी नवजीवन: 17 सितम्बर 1925 ।
9. वही, 19 सितम्बर 1929।
10. हरिजन सेवक: 19 दिसम्बर 1936।
11. रविन्द्रनाथ ठाकुर: रविन्द्रनाथ के निबन्ध : भाषा: पृ. 80।

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
जी.एस.एम पी.जी. कॉलेज सकीट (एटा), उ. प्र.

विमर्श

कीर्तन घोषा और सूर-सागर के गोपी-उद्धव संवाद का तुलनात्मक अध्ययन

✍ डॉ. जयश्री काकति

सार-संक्षेप :

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव (सन् 1449-1568) 'एक शरण नाम धर्म' के प्रवर्तक तथा असमीया भाषा-संस्कृति के पिता हैं। शंकरदेव के आगमन से पहले तक इस देश में तंत्र-मंत्र का अत्यंत प्रभाव था। शक्ति पूजा, शिव पूजा आदि का प्रचलन था। देवताओं को संतुष्ट करने के लिए निर्बलों की बलि दी जा रही थी। इन सबका विरोध करते हुए शंकरदेव ने एक ईश्वरवाद की स्थापना की थी, जिसका मूल मंत्र है- 'एक देव, एक सेव, एक बिने नाहीं केव'। शंकरदेव द्वारा प्रवर्तित नव-वैष्णव धर्म मूलत: कृष्ण भक्ति प्रधान है। उनकी रचनाओं को काव्य, भक्तितत्व विषयक ग्रंथ, अनुवादमूलक ग्रंथ, अंकीय नाट, गीत और नाम-कीर्तन-इन भागों में विभक्त किया जा सकता है। नाम कीर्तन के अंतर्गत कीर्तन घोषा आता है।

सूरदास हिंदी साहित्य जगत की सगुण धारा के कृष्ण भक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। अष्टछाप के प्रमुख कवि सूरदास श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। अंधे होने के बाद भी उन्होंने कृष्ण के रूप सौंदर्य का वर्णन बड़े ही सजीव रूप से किया है। सूरदास ने श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के आधार पर कृष्ण चरित्र का वर्णन किया है।

शंकरदेव तथा सूरदास अलग-अलग क्षेत्र के दो प्रसिद्ध वैष्णव कवि हैं। दोनों ही कृष्ण के अनन्य भक्त है। दोनों ने कृष्ण को लेकर अनेक रचनाएँ रची हैं। 'भ्रमरगीत' अथवा 'गोपी-उद्धव संवाद' ऐसा ही एक प्रसंग है। दोनों की विषय-वस्तु एक होने पर भी दोनों मे भिन्नता देखी जाती है।

इस शोधपत्र में उक्त विषय कीर्तन घोषा और सूर-सागर के गोपी-उद्धव संवाद का तुलनात्मक अध्ययन पर विस्तारपूर्वक चर्चा करने का प्रयास किया गया है।

बीज शब्द :

गोपी-उद्धव संवाद, शंकरदेव, सूरदास, कीर्तन घोषा और सूर-सागर

1. प्रस्तावना :

महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव (सन 1449-1568) 'एक शरण नाम धर्म' के प्रवर्तक तथा असमीया भाषा-संस्कृति समाज के पिता हैं। शंकरदेव के आगमन से पहले तक इस देश में तंत्र-मंत्र का अत्यंत प्रभाव था। शक्ति पूजा, शिव पूजा आदि का प्रचलन था। इन सबका विरोध करते हुए शंकरदेव ने एक ईश्वरवाद की स्थापना की थी, जिसका मूल मंत्र है- 'एक देव, एक सेव, एक बीने नाहीं केव'। शंकरदेव द्वारा प्रवर्तित नव-वैष्णव धर्म मूलत: कृष्ण भक्ति प्रधान है। उनकी रचनाओं को काव्य, भक्ति तत्व विषयक ग्रंथ,

अनुवादमूलक ग्रंथ, अंकीय नाट, गीत और नाम-कीर्तन-इन भागों में विभक्त किया जा सकता है। नाम कीर्तन के अंतर्गत कीर्तन घोषा आता है।

सूरदास (लगभग सन 1478-1583) हिंदी साहित्य जगत की सगुण धारा के कृष्ण भक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि हैं। अष्टछाप के प्रमुख कवि सूरदास श्रीकृष्ण के अनन्य भक्त थे। अंधे होने ने के बाद भी उन्होंने कृष्ण के रूप सौंदर्य का वर्णन बड़े ही सजीव रूप से किया है।

शंकरदेव तथा सूरदास दोनों विषय अपने आप में बहुत ही महत्वपूर्ण है। शंकरदेव एक साथ ही एक धर्म प्रवर्तक, समाज सुधारक, कवि, नाट्यकार, अभिनेता, संगीतज्ञ तथा परम भक्त थे। समाज में हो रही बुराइयों का विरोध कर एक शांतिपूर्ण समाज का जन्म देना ही उनका उद्देश्य था। सूरदास कृष्ण के अनान्य भक्त हैं। कृष्ण के हर रूप का वर्णन बड़े ही सजीव रूप से किया है। कृष्ण की बाल लीला वर्णन में विशेष सफलता मिलने के कारण सूरदास वात्सल्य के सम्राट कहे जाते हैं।

शंकरदेव तथा सूरदास दो भिन्न प्रांतों के वैष्णव कवि होने पर भी दोनों में बहुत समानता है। श्रीकृष्ण संबंधित अनेक विषयों का चित्रण दोनों ने किया है। विषयगत समानता मिलने पर भी कथन भंगिमा तथा शैली आदि में भिन्नता देखी जाती है।

शंकरदेव तथा सूरदास दोनों ही विषय व्यापक हैं। एक शोधपत्र में इन सबका पूर्ण रूप से समीक्षा करना संभव नहीं है। इस शोधपत्र में कीर्तन घोषा और सूर-सागर के गोपी-उद्धव संवाद का तुलना संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है।

2. शोध पद्धति :

अध्ययन की पद्धति विश्लेषणात्मक है। पत्र MLA (MODERN LANGUAGE ASSOCIATION) शोध पद्धति के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। अध्ययन में शंकरदेव तथा सूरदास से संबंधित ग्रंथ, इतिहास ग्रंथ, कोश, इंटरनेट आदि का सहारा लिया गया है। असमीया भाषा में 'स' उच्चारण वाले दो वर्ण हैं-'च' और 'छ'। असमीया में 'स' के लिए कोमल ह का उच्चारण होता है। असमीया के 'स', 'च', 'छ' इन तीनों वर्णों के लिए हिंदी लिप्यंतरण में क्रमश: 'स', 'च', 'छ' रखे गए हैं। हिंदी भाषा के 'य' वर्ण के लिए असमीया भाषा में दो वर्ण चलते हैं- एक का उच्चारण 'य' ही है और दूसरे का उच्चारण 'ज' होता है। असमीया 'य' के लिए हिंदी में भी 'य' रखा गया है, पर असमीया के 'य' के 'ज' वाले उच्चारण के लिए लिप्यंतरण में 'य' रखा गया है।

3. अध्ययन के विषय विश्लेषण :

शंकरदेव तथा सूरदास भारत के दो प्रांतों के महान साहित्यकार तथा वैष्णव कवि हैं। दोनों कृष्ण के अनन्य भक्त थे। भारतवर्ष के भक्ति-आंदोलन तथा भक्ति काल की आलोचना करने पर सूरदास, कबीरदास, तुलसीदास आदि के योगदान तथा उनके कार्यों की ही चर्चा होती है। लगभग उसी समय उत्तर-पूर्व भारत में श्रीमंत शंकरदेव तथा माधवदेव ने भी प्रचलित धार्मिक तथा सामाजिक रीति-नीति, आचार-विचार के विपरीत नए और प्रगतिशील विचार के साथ एक धार्मिक आंदोलन आरंभ किया था।

शंकरदेवकालीन असम की राजनीतिक परिस्थिति अशांत थी। मारकाट, छीना-झपटी, हत्या और लूट के कारण सामान्य जनता का जीवन असुरक्षित था। इसी बीच पश्चिम से इस्लामी आक्रमण भी हो रहे थे। इसी समय शंकरदेव का आविर्भाव युगद्रष्टा के रूप में हुआ। शंकरदेव के साहित्य में यद्यपि जनता का सुख-दुख प्रतिफलित नहीं हुआ है, लेकिन जनता के दुख-दर्द को देखकर ही सहज बोधगम्य भक्ति मार्ग, संगीत और अभिनय के माध्यम से जन मानस को उन्होंने साधना में निमग्न कराया है, इसमें संदेह नहीं है। आदरर्शात्मक होते हुए भी उनके साहित्य में मानवताबोध पग-पग पर मिलते हैं। वे ब्रजबुली भाषा के निर्माता, असमीय नाटक, बरगीत, और अभिनय कला के प्रवर्तक थे। अपनी रचनाओं में नए शब्द, नए छंद और नए प्रयोग करते हुए लोगों के मन में भक्ति भाव जगाने की कोशिश की थी। साहित्य में विविध रसों का प्रयोग, वर्णन कुशलता, स्पष्ट काव्यिक सौंदर्य के मिलन करने के कारण और नीति-आदर्श के प्रति जनता की दृष्टि आकर्षित करने

वाले शंकरदेव असमीया जाति के पथ प्रदर्शक हैं।

भक्तिकाल की सगुण धारा के कृष्ण-भक्ति शाखा के प्रमुख कवि सूरदास वल्लभाचार्य के परम शिष्य तथा अष्टछाप के प्रमुख कवि थे। वल्लभाचार्य के संपर्क में आने से पहले वे दास्य भाव तथा विनय भाव से पद लिखते थे। उनके संपर्क में आने के बाद सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य भाव की पद रचना करने लगे। सूरकाव्य का मुख्य विषय कृष्ण-भक्ति है। सूरदास की भक्ति पुष्टिमार्गीय भक्ति है।

भक्ति काव्य का प्रेरणास्त्रोत मुख्यत: भागवत धर्म है, जिसमें राम और कृष्ण को विष्णु का अवतार मानकर काव्य रचना की गई थी। वैष्णव भक्ति का वैशिष्ट्य अनेक रूपों में समाज में प्रतिबिंबित हुआ। प्राणी मात्र के प्रति प्रेम और उदार दृष्टि इस भक्ति का आधार है। शंकरदेव तथा सूरदास दोनों ने श्रीमद्भागवत के दशम स्कंध के आधार पर कृष्ण संबंधी अनेक पदों की रचना की है। सूरदास द्वारा रचित कृष्ण संबंधी पदों को 'सूरसागर' में संगृहीत किया गया है। यह एक गेय मुक्तक रचना है। श्रीमद्भागवत के समान इसमें भी बारह स्कंध हैं। शंकरदेव द्वारा रचित कीर्तन घोषा में 2261 पद हैं। इसमें सृष्टि के आदि से लेकर भगवान के अंश रूप में कृष्ण का आविर्भाव, श्रीकृष्ण का वैकुंठ प्रयाण तक वर्णन है। विभिन्न समयों में विभिन्न खंडों में लिखी गयी 27 काव्यों का संकलन कीर्तन कीर्तन-घोषा में हुआ है। कीर्तन-घोषा गोपी-उद्धव संवाद के 24 पदों की समष्टि है।

मामा कंश द्वारा कृष्ण को मथुरा बुलाने पर कृष्ण मथुरा चले जाते हैं। कृष्ण के मथुरा चले जाने के बाद गोपियाँ कृष्ण वियोग में तड़पती रहती हैं। कृष्ण अपना संदेश देकर उद्धव को वृंदावन भेजते हैं। कृष्ण वियोग में गोपियों की जो दयनीय दशा हुई, उसका वर्णन गोपी-उद्धव संवाद में हुआ है।

कृष्ण वियोग में गोपियों के मन में अनेक भवनाएँ आती हैं। उन्हें लगने लगता है कि कृष्ण मथुरा तथा कुब्जा के प्रेम-पाश में बंधकर गोपियों को भूल गए हैं।

शंकरदेव के शब्दों में-

एड़िला स्नेह प्रभु समुदाय।
मथुरा नागरी सुंदरी पाय ॥
ऐहि बुलि सबे लज्जाक एड़ि।
कांदन्त कृष्णर गुण सुमरि॥ (शर्मा 2014 :100)

सूरदास के शब्दों में-

कहियौ ठकुराइति हम जानी।
अब दिन चारि चलहु गोकुल
मैं सेवहु आइ बहुरि रजधानी॥
हमकौं हौंस बहुत देखन की,
संग लियै कुबिजा पटरानी।
पहुनाई ब्रज कौ दधि माखन,
बड़ौ पलंग अरु तातौ पानी॥

(आर्य और अग्रवाल 2007 : 372)

शंकरदेव तथा सूरदास दोनों में गोपी-उद्धव प्रसंग का वर्णन मिलता है। दोनों की विषय-वस्तु एक होने पर भी दोनों में भिन्नता देखी जाती है। शंकरदेव के उद्धव ने कृष्ण द्वारा भेजा गया संदेश उसी रूप में गोपियों के सम्मुख रखा-

जानिलो तुमि मुख्य हरिदास।
पठाइला पितृर मातृर पाश॥
मुनिरो दुस्त्यज बंधुर स्नेह।
जानो आनि आछा कृष्ण-संदेश॥

(शर्मा 2014 :100)

पर सूरदास द्वारा चित्रित उद्धव निराकारी ब्रह्म के उपासक थे। वह वृंदावन जाकर कृष्ण का संदेश न देकर गोपियों के सामने निर्गुण ज्ञान की चर्चा करने लगते हैं। यह सब सुनकर गोपियों को गुस्सा आ जाता है और गोपियाँ उद्धव को भँवरे का उपमा देती हैं। गोपी-उद्धव संवाद को ही सूरदास ने भ्रमरगीत नाम दिया है। भ्रमरगीत का अर्थ है-भौंरे को लक्ष्यकर कहे गए गीत।

रहु रे मधुकर मधु मरवारे।
कौन काज या निरगुन सौं, जीवहु कान्ह हमारे॥
लोटत पीत पराग कीच मैं, बीच न अंग सम्हारे।
बारम्बार सरक मदिरा की, अपरस रटत उघारे॥
तुम जानत हौ वैसी ग्वारिनि, जैसे कुसुम तिहारे।
घरि पहर साबहिनि बिरमावत, जेते आवत कारे॥
सुंदर बदन कमाल-दल लोचन, जसुमति नंद-दुलारे।
तन मन सूर अरपि रहीं स्यामहि, का पै लेंहि उधारे॥

(आर्य और अग्रवाल 2007 : 355)

शंकरदेव द्वारा रचित गोपी-उद्धव संवाद राधाविहीन है। सूरदास ने भी गोपी-उद्धव संवाद में 'राधा' शब्द का प्रयोग नहीं किया है। पर कुछ स्थानों में परोक्ष रूप से राधा की विरह दशा का वर्णन करते हुए देखा जाता है-

लरिकाई की प्रेम कहौ अलि कैसें छुटत।
कहा कहौ ब्रजनाथ चरित, अंतरगति लूटत।।
वह चितवनि वह चाल मनोहर
वह मुसकानि मंद-धुनि गावनि।
नटवर-भेष नंद-नन्दन कौ वह विनोद,
वह बन तै आवानि॥
चरन कमल को सौंह करति हौं,
यह संदेस मोहिं विष लागत।
सूरदास पल मोहिं न बिसरति,
मोहन मूरति सोवत जागत॥

(आर्य और अग्रवाल 2007 : 411)

4. उपलब्धियाँ :

8.1 शंकरदेव तथा सूरदास दोनों ने श्रीमद्भागवत को आधार मानकर ही गोपी-उद्धव संवाद लिखे थे।

8.2 शंकरदेव का गोपी-उद्धव संवाद और सूरदास भ्रमरगीत की कथा वस्तुत: एक ही है। शंकरदेव ने 'भ्रमरगीत' शब्द का प्रयोग कहीं भी नहीं किया हैं।

8.3 शंकरदेव का गोपी-उद्धव संवाद राधाविहीन है। सूरदास ने परोक्ष रूप से एक विशेष गोपी (राधा) का उल्लेख किया है।

8.4 सूरदास चित्रित उद्धव निरंकारी ब्रह्म के उपासक थे, पर शंकरदेव द्वारा चित्रित उद्धव के बारे में ऐसी कोई बात उल्लेखित नहीं है।

8.5 शंकरदेव की भाषा प्राचीन असमीया भाषा है। सूरदास ने ब्रजभाषा में भ्रमरगीत लिखा था।

8.6 शंकरदेव ने गोपी-उद्धव-संवाद में 25 पदों का समावेश किया, जबकि सूर का भ्रमरगीत व्यापक है। अपने 171 पदों में गोपी-उद्धव को समेटा है।

5 .निष्कर्ष :

शंकरदेव तथा सूरदास भारत के दो अलग प्रांतों के वैष्णव कवि हैं। दोनों के आराध्य कृष्ण हैं। पुष्टिमार्गी होने के कारण सूरदास ने राधा-कृष्ण की युगल मूर्ति की उपासना की। राधा जिस तरह से कृष्ण को पाने के लिए समस्त कष्टों को सहन कर लेती है, उसी रूप से सूरदास भी समस्त बाधाओं का सामना करते हैं। शंकरदेव की रचनाओं में राधा के लिए कहीं स्थान नहीं है। शंकरदेव की दृष्टि में सभी गोपियाँ समान हैं। यहाँ गोपी जीवात्मा का प्रतीक है और विष्णु परमात्मा का। अत: परमात्मा सभी जीवात्मा की मनोकामना समान रूप से पूर्ण करते हैं। आज भी शंकरदेव तथा माधवदेव को वह स्थान नहीं मिला, जो उन्हें मिलना चाहिए। इस शोध पत्र का लक्ष्य है कीर्तन घोषा और सूर-सागर के गोपी-उद्धव संवाद का तुलनात्मक अध्ययन करके महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव को असम की सीमा से बाहर निकालकर अंतर्राष्ट्रीय मंच पर बैठाना। ❑

सहायक ग्रंथ सूची :

1. आर्य, देवेन्द्र और सुरेश अग्रवाल(सम्पा). सुर सागर सटीक. प्रथम नई दिल्ली : अशोक प्रकाशन, 2017.
2. गोस्वामी, दिनेश चन्द्र, संपा. शराईघाट अभिधान. तीसरा संस्करण. गुवाहाटी : शराईघाट प्रकाशन, 2012.
3. महंत, चित्र. असमीया साहित्य का इतिहास. प्रथम गुवाहाटी : असम हिन्दी प्रकाशन, 2009
4. रायचौधुरी, भूपेन्द्र (सम्पा). असमीया साहित्य निकष. प्रथम गुवाहाटी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 2006
5. शर्मा, नवीन चंद्र. महापुरुष श्रीमंत शंकरदेव. प्रथम गुवाहाटी : बनलता प्रकाशन, 2014
6. श्रीवास्तव, मुकुंडीलाल, कालिका प्रसाद और राजवल्लव साहाय, संपा. वृहत हिन्दी कोश. परिवर्धित संस्करण. बनारसी : ज्ञानमंडल प्रकाशन, 2011

सहायक प्रोफेसर, हिंदी विभाग
बी.बरुवा कॉलेज, गुवाहाटी (असम)
फोन नंबर-8638625877, ईमेल-jayashree.kakati@rediffmail.com

अवलोकन

समकालीन हिंदी साहित्य में भारतबोध

विशेषतः रघुवीर सहाय की कविता 'कैमरे में बंद अपाहिज' के संदर्भ में

✍ डॉ. संतोष कुमार चतुर्वेदी

शोध सार :

भारतबोध क्या है? इस विषय पर विचार करने पर इसका सीधा-सा अर्थ है- मानव बनना तथा साहचर्य की भावना उत्पन्न करना। जहाँ संवेदना,सहिष्णुता, प्रेम, सद्भाव, भाईचारा हो, समाज के निराश्रित, लाचार और दबे-कुचले वर्ग के हित-साधना की चिंता हो। किसी दिव्यांग या अपाहिज का व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए उपयोग करना और उसके आँसू बेचकर धनोपार्जन और मनोरंजन करना भारतबोध नहीं है। यही कारण है कि कवि की पूर्ण सहानुभूति उस चरित्र के प्रति है, जो कैमरे के सामने बैठकर बाजारवाद का शिकार बन रहा था और उसकी वेदना बेची जा रही थी ।

बीज शब्द : समकालीनता की अवधारणा, भारतबोध, लघु मानव की स्थिति, रघुवीर सहाय की कविता में 'पर दुख कातरता'।

साहित्य के संदर्भ में समकालीनता के दो अर्थ लिए जा सकते हैं- पहला, समसामयिक अर्थात् जो साहित्य विशेष हमारे समय से संबंधित है और दूसरा, प्रासंगिक, जिसका अर्थ है- प्रासंगिक जीवन बोध, यानी कई अर्थों में देखा जाए तो कबीर का साहित्य आज भी प्रासंगिक है, परंतु वह समसामयिक नहीं है। दूसरी ओर यदि समकालीन साहित्य के उद्भव के कारणों और प्रवृत्ति पर दृष्टि डाली जाए तो 'समकालीनता' जीवन-जगत को देखने और परखने वाली दृष्टि है, जिसके मूल में प्रतिरोध को लक्षित किया जा सकता है। जहाँ समकालीनता का अर्थ है- अपने काल की मूल विसंगतियों का अवलोकन करना तथा उनके प्रति वास्तविक प्रतिरोध को साहित्य के माध्यम से व्यक्त करना है ।

समकालीनता की पृष्ठभूमि का अवलोकन करने पर सन 1962 में चीन और भारत के बीच हुई लड़ाई ने प्रेम, अहिंसा, मित्रता पर तेज प्रहार किया, नेहरू की पंचशील की अवधारणा भी असफल रही। सन 1964 में जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु ने भारतीय जन मानस में बची हुई आशा को एक तरह से समाप्त कर दिया। सन 1965 और 1971 में हुआ भारत-पाकिस्तान युद्ध हो या आपातकाल का दौर- इसके कुप्रभाव ने पहले से जर्जर भारतीय अर्थव्यवस्था को मृत प्रायः कर दिया। सन 1982 में जनवादी लेखक संघ की स्थापना हुई, दूसरी ओर सन 1984 में भोपाल गैस त्रासदी से असंख्य लोग मारे गए और विकलांग भी हुए। यही वह दौर था, जब उपनिवेशवादी शक्तियों ने जोर पकड़ी। दूसरी ओर नब्बे का दशक आते-आते भूमंडलीकरण के साथ उदारीकरण का आगमन हुआ, जिसने मुक्त बाजार का मंच तैयार किया।

उपयुक्त सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक परिवर्तन का व्यापक प्रभाव समकालीन साहित्य पर भी पड़ा और

नए सृजन एवं विमर्श का दौर एक तरह से आरंभ हुआ ।

समकालीन कविता पर विचार किया जाए तो यह आधुनिक काव्य साहित्य के व्यापक विकास में एक नई उद्भावना, जीवन जगत के प्रति एक नई संवेदना एवं नवीन शिल्प विधान के परिवर्तन को सूचित करती है । समकालीन कविता का आरंभ मूलत: सन 1962 के भारत-चीन सीमा संघर्ष के बाद उत्पन्न मोहभंग से माना जा सकता है, जो विसंगति बोध से उत्पन्न एक प्रतिक्रिया है, जिसमें एक तरह से सृजनमूलक चेतना का नवीन बीज मिलता है, जो आगे चलकर एक जीवन दृष्टि के रूप में रूपांतरित हो जाती है और काव्य में प्रतिरोध एवं सपाटबयानी को स्वर देती है। समकालीन काव्य की बड़ी प्रवृत्तियों में एक ओर विमर्श की प्रवृत्तियाँ हैं तो वहीं दूसरी ओर उपनिवेशवाद और आर्थिक साम्रज्यवाद के विरूद्ध जन आक्रोश की प्रवृत्ति को भी लक्षित किया जा सकता है।

समकालीन साहित्य में भारतबोध पर यदि बात की जाए तो यह कहा जा सकता है कि भारतीयता की पहचान तलाशना ही भारतबोध है। यद्यपि पश्चिमी देशों के केंद्र में पश्चिम का शहरी अभिजात्य वर्ग है, परंतु भारत में सहजीविता का संबंध केंद्र में है। यही कारण है कि भारत के समकालीन संवेदनशील कवियों ने सामाजिक यथार्थ के उन अवर्णित चरित्रों का भी चित्रण अपने काव्य में किया है, जिनको समाज ने हाशिये पर ढकेल दिया था। ऐसे कवियों की रचनाओं में 'पर दुख कातरता' को स्पष्ट रूप से लक्षित किया जा सकता है । समकालीन कवियों में ऐसी संवेदनशीलता के प्रस्फुटन के मूल में भारतबोध की भावना को नकारा नहीं जा सकता है ।

भक्तिकालीन रामभक्ति धारा के कवि 'गोस्वामी तुलसीदास' ने अपनी रचना 'श्रीरामचरित मानस' में इसी पर दुख कातरता को स्वर दिया है, जो भारतबोध का ही जीवंत उदाहरण है-

परहित सरिस धरम नहीं भाई ।
पर पीड़ा सम नहीं अधमाई ।।[1]

'भिक्षुक' शीर्षक कविता में 'निराला' ने उपेक्षित सामाजिक चरित्र 'भिक्षुक' को यथार्थ रूप में प्रस्तुत किया है:

वह आता-
दो टूक कलेजे को करता, पछताता
पथ पर आता ।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक
चल रहा लकुटिया टेक ।[2]

उपर्युक्त उदाहरणों में भारतबोध का वह अंकुर छिपा हुआ है, जो आगे चलकर समकालीन साहित्य में पूर्णत: प्रस्फुटित होता है।

समकालीन हिंदी साहित्य के पुरोधा कवि 'रघुवीर सहाय' ने अपनी कविताओं में भारतीय समाज का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है, जहाँ समाज के यथार्थ परिवेश के साथ-साथ यथार्थ व्यक्ति चरित्र का भी संवेदनशील चरित्र मिलता है। वे एक पत्रकार की भाँति जिस सत्य को देखते थे, उसको यथावत प्रस्तुत भी करते थे। वे समाज में हो रहे अन्याय और शोषण के विरूद्ध थे तथा 'पर हित' में विशस रखते थे। यही कारण है कि उन्हें लघु मानव के पक्ष में खड़ा देखा जा सकता है। उन्होंने ठेठ, गँवार, कृषक, सर्वहारा, दिव्यांगजन, मजदूर, किसान आदि का सजीव चित्रण कर नेतृत्व वर्ग को उनकी भलाई करने हेतु जागृत किया है।

समसामयिक समाज में यह विडंबना बनी हुई है, जहाँ व्यक्ति की आत्मा को ठेस पहुँचाकर उसके आँसू खरीदे जा रहे हैं। हर तरफ बाजारवाद की प्रतिस्पर्धा

चल रही है, लेकिन भारत की पहचान सहिष्णुता, प्रेम और संवेदनशीलता में व्याप्त है। कवि 'रघुवीर सहाय' ने अव्यक्त रूप में इसे अनुभव भी किया है और इस ओर संकेत भी कर रहे हैं। 'डॉ. जगन्नाथ पंडित' के मतानुसार, ''कविता संघर्षमय जीवन से साक्षात्कार कराती है और समय के अनुसार अपना तेवर बदलती है। वह जहाँ सौंदर्य और कोमल भावनाओं से जुड़ती है, वही अमानवीयता के प्रति आक्रामक भी होती है।''[3]

उपर्युक्त कथन से यह बात स्पष्ट हो जाता है कि कविता के स्वरूप में पात्र और परिस्थिति के अनुसार बदलाव भी आता रहा है। अर्थात एक ओर जहाँ कविता सौंदर्य और कोमल भावनाओं से जुड़कर विकसित हुई है तो वहीं दूसरी ओर समाज और व्यक्ति विशेष को केंद्र में रखकर उसके ऊपर हो रहे अमानवीय व्यवहार के प्रति आक्रामक भी हुई है।

'कैमरे में बंद अपाहिज' शीर्षक कविता समकालीन कवि 'रघुवीर सहाय' के काव्य संग्रह आत्माहत्या के विरूद्ध से उद्धृत है। यहाँ पर कवि ने एक दिव्यांग यानी शारीरिक चुनौती को झेलते हुए व्यक्ति का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है कि वह जीवन के कठिन यथार्थ का सामना कैमरे के सामने किस रूप में करता है, जहाँ उससे अप्रत्याशित प्रश्न पूछे जाते हैं –

''तो आप क्या अपाहिज हैं ?
तो आप क्यों अपाहिज हैं ?
आपका अपाहिजपन तो दुख देता होगा देता है ?''[4]

यहाँ पर बाजारवाद की प्रतिस्पर्धा का ही चित्रण देखा जा सकता है, जिसने मानव को कितना स्वार्थी और धनलोलुप बना दिया है कि उसने मानवीय संवेदना को हाशिये पर रखकर धनोपार्जन को ही केंद्र में रखा है। फलस्वरूप वह एक अपाहिज व्यक्ति से ऐसे सवाल करता है कि ''आपका अपाहिजपन तो दुख देता होगा देता है ?''

किसी असहाय और असमर्थ व्यक्ति से ऐसे प्रश्न करना एक मायने में मानव होने की गरिमा खोने जैसा है। इस कविता के माध्यम से कवि भारतीय समाज में व्याप्त ऐसे अमानवीय व्यवहार के प्रति आक्रामक होते हैं तथा असंवेदनशीलता की तीव्रता को भी प्रकट करते हैं, जहाँ 'परहित' और 'सहृदयता' का सर्वथा अभाव है। कवि इस कविता को साहित्य पटल पर रखकर इन्हीं संवेदनशील शब्दों की ओर इशारा करते हैं, जो भारतबोध को प्रतिनिधित्व प्रदान करते हैं।

यह कविता समकालीन होने के साथ-साथ समसामयिक भी है, क्योंकि हम आए दिन अपने आस-पास, बस स्टैंड, रेलवे स्टेशन, कार्यालय, सभा, संगोष्ठी आदि जगहों पर ऐसे शारीरिक रूप से अक्षम लोगों को पाते हैं, जो वहाँ मानसिक रूप से अक्षम सभ्य लोगों के लिए मनोरंजन मात्र होते हैं । यह एक सामाजिक विडंबना है, जो हर तरह से भारतबोध की महानता को लहूलुहान और क्षत-विक्षत करती है ।

'डॉ. जगन्नाथ पंडित' के शब्दों में, ''सामाजिक विकास की द्वंद्वात्मक प्रक्रिया में एक रचनाकार का जुड़ाव उसके सबसे कमजोर वर्ग के साथ होता है। जैसे जंजीर की मजबूती उसकी सबसे कमजोर कड़ी पर निर्भर करती है, वैसे ही समाज की मजबूती और समृद्धि उसके सबसे कमजोर वर्ग पर निर्भर है।''[5]

उपर्युक्त संदर्भ के आधार पर इस कविता को देखा जाए तो यह प्रश्न उठना स्वाभाविक हो जाता है कि ऐसे शारीरिक दृष्टि से अक्षम चरित्र के अंतर्मन को शब्दों के वाण से घायल करके किसी सभ्य समाज को मजबूत, विकसित या समृद्ध बनाया जा सकता है? 'रघुवीर सहाय' जैसे संवेदनशील कवि की रचना दृष्टि में ऐसे उपेक्षित चरित्र का केंद्र में होना, एक तरह से हाशिये को मुख्यधारा से जोड़ने का एक प्रयास है, जो सभ्य और समर्थ समाज के लिए चिंतन का द्वार खोलता है। अत: भारतबोध वही है, जो उपेक्षित और तिरस्कृत जन के साथ खड़ा हो, उनकी वेदना और पीड़ा को अनुभव कर सके, न कि उनका तिरस्कार करके उनकी वेदना को और तीव्र बना दे।

कवि 'रघुवीर सहाय' के शब्दों में –

''आप जानते हैं कि कार्यक्रम
रोचक बनाने के वास्ते
हम पूछ-पूछकर उसको रूला देंगे
इंतजार करते हैं आप भी उसके रो पड़ने का ?
यह प्रश्न पूछा नहीं जाएगा।''[6]

एक तरह से आँसू को मनोरंजन बनाकर बेचने वाला बेच रहा है और खरीददार बिना कोई प्रश्न किए उसका आस्वादन करता जा रहा है। दोनों की संवेदना मर चुकी है और उसकी जगह मनोरंजन ने लिया है। कवि 'रघुवीर सहाय' कहीं-न-कहीं इस ओर संकेत कर रहे हैं।

आजादी के बाद भारतीय जनमानस के सामने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विघटन का भयंकर रूप उपस्थित होता है, जो सन 1960 के बाद और भी विकट रूप में समाज के आदर्शबोध और संवेदना को ग्रसित करने लगता है। ''स्वातंत्र्योत्तर काल से ही जनता के सामने जो चुनौतियाँ और समस्याएँ थीं, वे साठ के बाद और गहरा गईं। व्यवस्था की अमानवीयता, निर्ममता ने और तीव्र रूप ले लिया।''[7]

मूलत: 'रघुवीर सहाय' की कविता 'कैमरे में बंद अपाहिज' समकालीन कविता को अपने स्तर पर प्रतिनिधित्व प्रदान करती है, जहाँ पैनी व्यंग्यात्मकता के साथ-साथ, संवेदना, पर दुख कातरता और मानवतावादी बोध को भी अनुभव किया जा सकता है। ये भाव विशेष ही भारतबोध की परिकल्पना को साकार करते हैं।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रघुवीर सहाय समकालीन भारतीय काव्य साहित्य के संवेदनशील 'नागर' चेहरा हैं, जिन्होंने समाज के अवहेलित चरित्र और परिवेश को खरे शब्दों में अभिव्यक्ति दी है, जो समकालीन जीवन में आत्मान्वेषण के माध्यम बनकर सामने आते हैं। उनके द्वारा लिखित 'कैमरे में बंद अपाहिज' शीर्षक कविता में उन्होंने छोटे या लघु चरित्र की सामाजिक महत्ता को स्वीकार किया है।

इस कविता को शरीरिक चुनौती झेलते व्यक्ति के प्रति संवेदनशील दृष्टि अपनाने के लिए प्रेरित करती समकालीन प्रतिनिधि रचना के रूप में देखा जा सकता है। कवि जहाँ करुणा और क्रूरता दोनों को रेखांकित करते हैं कि किस तरह करुणा जगाने के उद्देश्य से शुरू हुआ कार्यक्रम क्रूर बन जाता है। अत: ऐसे अवहेलित और दिव्यांग सामाजिक चरित्र के प्रति कवि के हृदय में स्थित संवेदनशील एवं मानवता ही भारतबोध का प्रतिध्वनित करते हैं । ❑

संदर्भ :

1. श्रीरामचरित मानस- गोस्वामी तुलसीदास, उत्तरकाण्ड, गीता प्रेस, गोरखपुर पृ. सं.-948
2. आधुनिक काव्य संग्रह, सम्पादक- डॉ.रामवीर सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. सं. 84
3. समकालीन हिन्दी कविता का परिप्रेक्ष्य, डॉ.जगन्नाथ पंडित, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. सं. 205
4. आरोह-भाग-2,राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद,पृ.सं. 23
5. समकालीन हिन्दी कविता का परिप्रेक्ष्य, डॉ.जगन्नाथ पंडित, नमन प्रकाशन,नई दिल्ली, पृ. सं. 182
6. आरोह-भाग-2, राष्ट्रीय शौक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद,पृ.सं. 23,24
7. समकालीन कविता की प्रवृत्तियाँ, डॉ.रामकली कराफ, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ. सं. 171

सहायक प्राध्यापक
जगन्नाथ सिंह महाविद्यालय
कछार-788030 (असम)
मोबाइल नंबर 9435622256

आलेख

समकालीन हिंदी कविता और धूमिल

✍ सत्यवन्त यादव

कवि का उसकी कविता से गहरा संबंध होता है। कविता के माध्यम से कवि अपनी अनुभूतियों को सशक्त अभिव्यक्ति प्रदान करता है। कविता के माध्यम से कवि समाज में निहित सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक समस्याओं व विडंबनाओं पर प्रहार करने में सक्षम होता है। कवियों ने अपनी कविताओं के माध्यम से समाज में व्याप्त रूढ़ियों, विडंबनाओं एवं तात्कालिक त्रासदियों को अभिव्यक्त भी किया है। अक्सर लोग कविता को सिर्फ मनोरंजन और उपभोग तक ही सीमित करके देखते हैं। यह गलत है, क्योंकि कविता का उद्देश्य मात्र मनोरंजन करना ही नहीं होता, बल्कि विद्रोह और बदलाव के पक्ष में भी वह हमेशा खड़ी नजर आती है। मैथिलीशरण गुप्त कवि और कविता की सार्थकता के संबंध में कहते हैं कि–

''केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए,
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।''[1]

प्रश्न उठता है कि समकालीनता क्या है? तो हम कह सकते हैं कि प्रत्येक युग की अपनी समकालीनता होती है और उस समकालीनता के निर्माण में उस समय की गतिविधियाँ, मूल्य एवं दृष्टि अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। समकालीन कविताएँ मानवीय चिंता की कविताएँ हैं, जिनमें समकालीन जिंदगी के दबावों को सहते हुए और आज के यांत्रिक और साम्राज्यवादी, पूँजीवादी समाज के विसंगति और तनावों में निरंतर टूटते हुए मनुष्य की यंत्रणा और त्रासदपूर्ण स्थिति के साथ-ही-साथ उसकी संघर्षशील चेतना शक्ति भी व्यक्त हुई है। ''मेरी दृष्टि में समकालीनता मानव-भविष्य के प्रति पक्षधरता का दूसरा नाम है। भविष्य के प्रति, नियति के प्रति नहीं। वर्तमान में मानव परिस्थिति को मानव नियति मान लेना, अनजाने या जान-बूझकर मानव भविष्य की अनंत संभावनाओं को अस्वीकार करना और मानव-भविष्य को अवरुद्ध कर देने वाले मूल्यों और विचारों का पक्षधर होना है...मनुष्य की प्रतिभा और सामर्थ्य की अनंत संभावनाओं का द्वार अपने अनुभव के लिए खुला रखकर सप्रयत्न उसके वर्तमान को बदलने में जो संलग्न होता है, वही समकालीनता का धर्म-निर्वाह करता है।''[2]

समकालीनता को परिभाषित करते हुए धूमिल लिखते हैं कि ''रूप, रंग और अर्थ के स्तर पर आजाद रहने की, सामने बैठे आदमी की गिरफ्त में न आने की तड़प, एक आवश्यक और समझदार इच्छा, जो आदमी को आदमी से जोड़ती है, मगर आदमी को आदमी की जेब या जूते में नहीं डालती। स्वतंत्रता की तीव्र इच्छा और उसके लिए पहल तथा उस पहल के समर्थन में लिखा गया साहित्य ही समकालीन साहित्य है।''[3]

समकालीन कविता बड़े ही मुस्तैद तरीके से समय और समाज के मूल्यांकन पर बल देती है, उसे वह सब नापसंद है, जिससे समाज की प्रगति अवरुद्ध होती हो। समकालीन कविता में जो अस्वीकार है, वह जीवंत है, वह सकारण है, उसमें रचनात्मकता है। यह वह कविता है, जिसमें मनुष्य की स्थितियों और समय की शिला पर पड़े निशानों को पकड़ा गया है तथा जिंदगी के साक्षात्कृत

अनुभव कविताबद्ध किए गए हैं। परिवर्तन की चोट सहकर लिखी गई समकालीन कविता न केवल कविता है, अपितु एक ऐसी बही है, जिसमें हर आदमी जाने-अनजाने कोई न कोई बरख जोड़ता रहा है। पिछले वर्षों में जिंदगी की इसी बही में अपनी उपस्थिति बतलाता हुआ भी आदमी यहाँ से कितना गैर-हाजिर रहा है, कितना टूटकर बिखरा है और कितना बेबस और लाचार होकर जीता रहा है, कितने ऐसी शीर्षक हैं, जिसमें बँटता हुआ भी वह यहाँ-वहाँ भटका है, यह सब समकालीन कविता के बही खातों के पन्नों में पढ़ा जा सकता है।

समकालीन हिंदी कविता में धूमिल की बात करें तो हम पाते हैं कि धूमिल ऐसे कवि हैं, जिन्होंने सामाजिक और राजनैतिक यथार्थ में सीधा अंतर पैदा किया है। उनके लिए राजनीति एक जीवंत एवं कठोर सत्य बनकर आई है। यही कारण है कि धूमिल की अधिकांश कविताएँ राजनीति से संबंधित हैं। कवि गत पच्चीस वर्षों के भारत की वास्तविकता को अनेक संदर्भी-स्थितियों अथवा उल्लेखों में प्रस्तुत करता है। जनमत के नाम प्रदर्शन, चुनाव, दल परिवर्तन, टोपी बदलाव, कुर्सी-प्रियता, भाईचारा, राजनीति प्रहार द्वारा धूमिल यथार्थ बोध कराते हैं। इनकी कविताओं में सबसे अहम मसला राजनीतिक अव्यवस्था एवं अराजकता का है और उसकी अभिव्यक्ति के लिए भाषा रास्ता तैयार करती है। धूमिल की स्वतंत्र विचारधारा एवं जीवन का प्रभाव उनकी भाषा पर स्पष्ट दिखाई पड़ता है। विचारों की अभिव्यक्ति करने हेतु उनको जब जिस शब्द की आवश्यकता पड़ी उसको तुरंत ग्रहण कर लिया। यही कारण है कि भाषा, भावभूमि, कथ्य एवं अपने शिल्पगत प्रयोगों के कारण वे अपने समकालीन रचनाकारों से पृथक एवं बेजोड़ रहे हैं।

धूमिल की कविता सामाजिक यथार्थ की कविता है। उनकी कविता का मुख्य स्वर अपने युगबोध की सार्थक अभिव्यक्ति ही रहा है। धूमिल अपने काल एवं परिवेश से संबद्ध हैं तथा इन्होंने समय के यथार्थ को जिया है और उसी का अंकन अपनी कविताओं में किया है। उनकी कविताओं में जनसामान्य के सुखद क्षणों का वर्णन अत्यल्प है एवं दुखों के वर्णन का ही बाहुल्य है। धूमिल अपनी कविता 'पटकथा' में लिखते हैं-

''मैंने ऊब और गुस्से को
गलत मुहावरे के नीचे से गुजरते हुये देखा
मैंने अहिंसा को
एक सत्तारूढ़ शब्द का गला काटते हुये देखा
मैंने ईमानदारी को अपनी चोर जेब में
भरते हुये देखा
मैंने विवेक को
चापलूसों के तलवे चाटते हुये देखा...।''[4]

बंधन से मुक्ति एवं स्वतंत्रता की छटपटाहट ही धूमिल कविता में विद्रोह है। सामान्य रूप से मनुष्य, भौतिक एवं मानवीय परिस्थितियों के खिलाफ ही विद्रोह करता है। धूमिल ने मुख्यत: सामान्य जन की चिंताओं, आक्रोश एवं छटपटाहट को अपनी रचनाओं में अभिव्यक्ति देने का कार्य किया है और इसे ही अपने कविकर्म के रूप में स्वीकृत किया है। धूमिल मुख्यत: भीड़, संसद, लाठी चार्ज, मतदान इत्यादि की इसलिए बात करते हैं ताकि आम आदमी भी अपने वास्तविक परिवेश से परिचित हो सके और उसे जान सके। उनकी कविताओं में व्यवस्था के प्रति विद्रोह भी इसीलिए दिखाई देता है, क्योंकि उन्होंने जैसी आदर्श व्यवस्था कि कल्पना की थी वैसा वास्तविकता में कुछ भी घटित नहीं हुआ।

''मैं इंतजार करता रहा...
इंतजार करता रहा...
इंतजार करता रहा...
जनतंत्र, त्याग, स्वतंत्रता...
संस्कृति, शांति, मनुष्यता...
ये सारे शब्द थे
सुनहरे वादे थे
खुशफहम इरादे थे।''[5]

धूमिल की कविताओं के केंद्र में मुख्यत: आम आदमी एवं उसका कष्ट, उसकी पीड़ा, आक्रोश एवं विवशता इत्यादि ही थे। जनसामान्य की समस्याओं पर उन्होंने सबका ध्यान आकर्षित किया एवं उसके कष्टों को मुखर अभिव्यक्ति देने का कार्य किया है। डॉ. ब्रजमोहन शर्मा लिखते हैं कि- ''निराला की 'भिक्षुक', 'वह तोड़ती पत्थर' जैसी रचनाओं से आम आदमी की जिंदगी को संस्पर्श करती जिस नवीन काव्य परंपरा का श्रीगणेश

हुआ था, समकालीन कवियों ने उसी का निर्वाह भुट्टा सेंकने वाली, शरीर बेचने के लिए विवश नारी तथा निर्वासित, निर्वसन, भूखे लोगों के अभावग्रस्त जीवन के अंकन द्वारा किया है।''[6]

धूमिल की रचनाओं की एक प्रमुख प्रवृत्ति विसंगतिबोध है। काव्य रचना प्रक्रिया के संबंध में विसंगतिबोध वह यथार्थमूलक प्रक्रिया है, जो बाह्य स्थितियों एवं तनाओं आदि से उत्पन्न हो। धूमिल की कविताओं में विसंगतिबोध की मुखर अभिव्यक्ति देखी जा सकती है। आजादी के कई वर्ष बीतने के बाद भी जब कोई परिवर्तन नहीं होता और आम आदमी वैसे ही अपनी रोजमर्रा की जरूरतें पूरी करने में परेशान है, आजादी के सुनहरे वादे मात्र वादे रह जाते हैं, गरीब आदमी और गरीब बनता जा रहा है, चारों ओर गरीबी, महँगाई और बेकारी फैल रही होती है। तब धूमिल यह कहते हैं कि–

''मैंने इंतजार किया–
अब कोई बच्चा
भूखा रहकर स्कूल नहीं जाएगा
अब कोई छत बारिश में
नहीं टपकेगी। ...''[7]

किंतु आजादी के बाद के स्वप्न झूठे वादे प्रतीत होते हैं, आम आदमी अपनी रोटी, कपड़ा, मकान जैसी मूलभूत आवश्यकताएँ भी पूरा कर पाने में असमर्थ है।

''उनकी सत्ता पकड़ के नीचे
भूख से मारा हुआ आदमी
इस मौसम का
सबसे दिलचस्प विज्ञापन है और गाय
सबसे सटीक नारा है।''[8]

धूमिल की कविता में सपाट बयानी भी देखने को मिलती है। सपाट बयानी समकालीन हिंदी कविता की प्रमुख विशेषताओं में से एक है। सपाट बयानी का अर्थ है 'वह कविता जो सीधी, सहज और सरल भाषा में लिखी गई हो। जिसकी शैली एकदम सपाट हो।' साठ के बाद की बदली परिस्थितियों की यथार्थ अभिव्यक्ति के लिए जब परंपरागत भाषा उपयुक्त नहीं रह गई तो युवा कविय अपने समय के सच को उजागर करने के लिए सीधी-सपाट और बेलौस भाषा का प्रयोग करने लगे, जिसमें धूमिल प्रमुख हैं। ''धूमिल को इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए कि उन्होंने युवा कवियों को मुक्ति बोधिन फैंटसी के आकर्षण से उभार कर सपाट बयानी की ओर प्रेरित किया।''[9] सच्चे अर्थों में धूमिल शब्दों को खोलकर रखने वाले कवि हैं और कविता के लिए शब्दों का चुनाव आम जनमानस के बीच से करते हैं। इसके साथ ही उन शब्दों को उठाकर सलीके से एक संपादक की दृष्टि से रखते चलते हैं। इनका यही देशीपन उनको कबीर की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देता है। यही कारण है कि उनकी कविता, कविता न होकर आम जनमानस की प्रखर आवाज बनकर उभरते लगती है और सहजता के साथ जनमानस जुड़ाव महसूस करने लगता है। 'धूमिल की अंतिम कविता' में भी इसकी बानगी देखने को मिलती है–

''लोहे का स्वाद
लोहार से मत पूछो
उस घोड़े से पूछो
जिसके मुंह में लगाम है।''[10]

समकालीन हिंदी कविता में लोकोक्तियों, मुहावरों और सूक्तियों का प्रयोग खूब हुआ है। धूमिल की कविता में भी यह विशेषता देखने को मिलती है। धूमिल की काव्य-भाषा में जनमानस में प्रचलित मुहावरे, लोकोक्तियों का प्रयोग पाया जाता है। धूमिल ने अपने

काव्य में सूक्ष्म भावों की तीक्ष्ण अभिव्यक्ति के लिए इनका प्रयोग किया है। ऐसे प्रयोगों से धूमिल की अनुभूति और भी प्रखर तथा तीव्र हो गई है। उनकी काव्य-भाषा में दो तरह के मुहावरों का प्रयोग मिलता है- एक जो परंपरा से चले आ रहे हैं (जैसे-परंपरा की मालिश, इनकार भरी चीख) और दूसरे वे जिन्हें स्वयं धूमिल ने निर्मित किए हैं (जैसे-मातृ भाषा महरी की तरह है, जानवर बनने के लिए कितने सब्र की जरूरत होती है) इत्यादि।

''वे घर की दीवारों पर नारे
लिख रहे थे
मैंने अपनी दीवारें जेब में रख लीं।''[11]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि धूमिल समकालीन हिंदी कविता के एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं। इनकी कविता में समकालीन हिंदी कविता की सभी विशेषताओं का समावेश है। इन्होंने अपनी कविता में समाज की दुर्दशा के खिलाफ लिखा तो वहीं राजनीतिक व्यवस्था के खिलाफ भी जमकर करारा व्यंग्य और आक्रोश व्यक्त किया।

इनकी कविता और काव्य-भाषा में नवीनता का समावेश दिखाई पड़ता है। इसी नवीनता ने धूमिल को समकालीन हिंदी कवियों में विशिष्ट बनाया है। ❑

संदर्भ सूची :

1. गुप्त, मैथिलीशरण, भारत-भारती, साहित्य सदन प्रकाशन, संस्करण 1974, पृ. 173
2. सहाय, रघुवीर, लिखने का कारण, पृ. 28
3. http://studentgyan.com (स्टूडेंट ज्ञान डॉट कॉम)
4. धूमिल, संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2013 पृ. 120
5. धूमिल, संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2013 पृ. 102
6. शर्मा, ब्रजमोहन, समकालीन कविता और लीलाधर जगूड़ी, शारदा प्रकाशन, दिल्ली पृ. 24
7. धूमिल, संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2013 पृ. 101
8. धूमिल, संसद से सड़क तक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2013 पृ. 10
9. जोशी, मीनाक्षी, धूमकेतू धूमिल और साठोत्तरी कविता, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2009, पृ. 221
10. धूमिल, कल सुनना मुझे, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2014, पृ. 109
11. धूमिल, सुदामा पांडे का प्रजातंत्र, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, संस्करण 2014, पृ. 54

शोधार्थी (हिंदी विभाग)
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
ईमेल : satyavantvapril@gmail.com

चिंतन

बौद्ध धर्म का क्रमिक विकास : बुद्ध, बौद्ध एवं नवबौद्ध

✍ संजय यादव

शोध-सार :

महात्मा बुद्ध, शुद्धोदन और माया के पुत्र थे । उनका जन्म एक समृद्ध परिवार में हुआ था। नगर दर्शन के अवसर पर जब बुद्ध मार्ग में निकले तब उन्हें वृद्ध, रोगी शव तथा प्रसन्नचित संन्यासी के दर्शन प्राप्त होने के पश्चात जीवन से वैराग्य उत्पन्न हो गया।

बुद्धत्व प्राप्त करने के पश्चात उन्होंने भारत में भ्रमण करते हुए विभिन्न स्थानों पर उपदेश दिए। महात्मा बुद्ध अपने धर्म को मध्यम मार्ग कहते हैं, क्योंकि वह मानते थे अपनी आत्मा और शरीर को व्यर्थ ही मारना तथा कष्ट देते रहना अनुचित है, आत्महनन, आत्मपीड़न उचित नहीं है। साथ ही, विलास और भोग में जीवन व्यतीत करना भी अनुचित है। दोनों प्रकार के अतिरेकों को वह ठीक नहीं मानते।

डॉ. भीमराव अंबेडकर द्वारा आरंभ किया गया नवबौद्ध हिंदू धर्म में उपस्थित दलित वर्ग को हिंदू धर्म से मुक्ति दिलाने का प्रयास था, जहाँ तथाकथित ऊँची जाति से पीड़ित एवं शोषित लोगों ने बौद्ध धर्म अपनाया तथा वे 'नवबौद्ध' कहलाए।

बीज-शब्द : बुद्ध, बौद्ध, नवबौद्ध, अभिनिष्क्रमण, मध्यमा प्रतिपदा, अष्टांगिक मार्ग, नवबौद्ध, प्रतीत्य समुत्पाद, बौद्ध संघ।

1.प्रस्तावना :

महात्मा बुद्ध अवतार नहीं थे, वह एक महामानव थे । भारत के पुरातात्विक एवं ऐतिहासिक प्रमाण यह सिद्ध करते हैं कि बुद्ध पौराणिक अवतार नहीं, बल्कि ऐतिहासिक पुरुष थे। महात्मा बुद्ध की मान्यता थी कि प्रत्येक कार्य एक कारण पर निर्भर होता है, अर्थात संसार का कोई भी कार्य आकारण नहीं है। सृष्टि की समस्त घटनाएँ एक क्रम में हो रही हैं तथा एक घटना अथवा कार्य दूसरे कार्य के लिए कारण बन जाता है। इसे प्रतीत्य समुत्पाद मध्यमा प्रतिपदा का नाम दिया गया। यह विचार आस्तिकता (शाश्वता का सिद्धांत) एवं नास्तिकता (उच्छेदवाद) के बीच का मार्ग है ।

बुद्ध के हृदय में ज्ञान प्राप्ति के पूर्व अनेक शंकाएँ उत्पन्न हुई थीं। उन्होंने विचार किया कि मनुष्य ऐसी दुखपूर्ण स्थिति में क्यों है? अंततः उन्हें ज्ञात हुआ जिसे आर्य सत्य चतुष्टय अथवा चत्वारि आर्य सत्य कहा गया। चार आर्य सत्य बौद्ध धर्म के सिद्धांतों की आधारशिला हैं।

बौद्ध संघ में प्रवेश को उपसंपदा कहा जाता है । बौद्ध संघ का यह सिद्धांत था कि संस्थापक के अतिरिक्त कोई अन्य नियम नहीं बना सकता था। संघ का लोकतांत्रिक स्वरूप था । वर्तमान काल में 'नवबौद्ध' नामक संज्ञा भारत में धर्म परिवर्तन कर बौद्ध बने हुए लोगों के लिए प्रयोग में लाई जाती है। किंतु नवबौद्ध अनुयायी इस संज्ञा को नहीं मानते। उनका मानना है कि बौद्ध धर्म अपनाने के पश्चात भी उनकी पहचान केवल बौद्ध रहेगी। नवबौद्धों को अंबेडकरवादी बौद्ध भी कहा जाता है, क्योंकि वे सभी डॉ. भीमराव अंबेडकर की प्रेरणा से ही बौद्ध बने थे ।

2. विश्लेषण :

ईसा पूर्व छठी सदी में नेपाल राज्य की तराई में शाक्य क्षत्रियों का एक छोटा-सा गणराज्य था। सिंहली ग्रंथों के अनुसार शाक्य राजा सिंहहनु के पुत्र शुद्धोदन का, राजा अंजन की दो पुत्रियों-माया और प्रजापति से विवाह हुआ। बुद्ध, शुद्धोदन और माया के पुत्र थे, जबकि प्रजापति नंद की माता थीं।

बुद्ध के जन्म की तिथि उनके निर्वाण की तिथि से निकाली जाती है। वे अस्सी वर्ष तक जीवित रहे, अतएव उनका जन्म 623 ईसा पूर्व में हुआ। इस तिथि का समर्थन खारवेल के अभिलेख में दिए हुए कुछ तथ्यों और तिथियों से होता है। किंतु 623 ईसा पूर्व की तिथि का सिंहली इतिहास ग्रंथों की इस बात से विरोध पड़ता है कि अशोक का राज्याभिषेक बुद्ध निर्वाण के 218 वर्ष बाद, अर्थात 326 ई.पू. में हुआ। अशोक के अभिषेक की ठीक ज्ञात तिथि 270 ई.पू. है।

''दस मास तक बोधिसत्व को गर्भ में रखने के बाद जब प्रसव का समय निकट आया तो रानी महामाया की इच्छा अपने मातृ-कुल के नगर देवदह में जाने की हुई। राजा ने अनुमति दे दी। मार्ग में लुम्बिनी उद्यान में वे रुकीं और शाल वृक्ष के नीचे की शाखा पकड़े खड़ी थीं कि प्रसव वेदना से व्याकुल हो गईं। इस प्रकार बुद्ध का जन्म हो गया। किंतु सात दिन बाद उनकी माता का देहांत हो गया।''[1] तत्पश्चात उनका लालन-पालन उनकी विमाता और मौसी महा-प्रजापति गौतमी ने किया।

बुद्ध के निश्चित जन्म स्थान की पहचान, अशोक द्वारा 250 ई. पू. में स्थापित स्तंभ से हो सकी है, जिस पर यह लेख है- 'हिद बुधै: जाते सक्यमुनीत' अर्थात यहाँ बौद्ध शाक्य मुनि का जन्म हुआ। इस स्थान को लेख में लुम्बिनी (लुंमिनी) कहा गया है। यह नौतनवा स्टेशन से लगभग बारह मील नेपाल के बिथरी जिले में है।

सिद्धार्थ भोग विलास में बड़े हुए। भोग विलास और महलों के सुख के बीच रहकर भी जीवन के कुछ कठोर सत्यों, जैसे ''जन्म, रोग, मृत्यु, दुख और अपवित्रता से वे अत्यंत प्रभावित हुए।''[2] पाली ग्रंथ मध्यामनिकाय (1-240) में अभिनिष्क्रमण का एक सरल रूप बुद्ध के ही मुख से कहलाया गया है -''बोधि प्राप्त करने के पूर्व बोधिसत्त्व की दशा में ही मुझे विचार हुआ कि यह गृहस्थी का जीवन, जहाँ पूर्ण, शुद्ध धर्ममय जीवन का अभ्यास सरल नहीं, बहुत ही बाधक है।'' उन्होंने अपने माता-पिता की श्रद्धा के कारण बारह वर्ष तक गृहस्थ जीवन व्यतीत किया। गृहस्थ जीवन में उन्हें एक पुत्र प्राप्त हुआ। जब सेविकाओं ने सिद्धार्थ को पुत्र लाभ की सूचना दी, तब सिद्धार्थ के मुँह से निकल पड़ा -''राहु जातो बन्धनं जातंति।'' अर्थात राहु उत्पन्न हुआ, बंधन पैदा हुआ।[3]

नगर दर्शन के लिए भिन्न-भिन्न अवसरों पर भ्रमण करते हुए सिद्धार्थ को मार्ग में जर्जर शरीर वृद्ध, व्यथापूर्ण रोगी, मानव शव और अंत में प्रसन्नचित संन्यासी के दर्शन हुए। इन दृश्यों ने संसार के प्रति सिद्धार्थ की उदासीनता और भी अधिक दृढ़ कर दी। उनके हृदय में सांसारिक सुख साधनों की निष्फलता और प्रवर्ति मार्ग की निस्सारता तथा निवृत्ति मार्ग की संतोष भावना को पूर्ण रूप से पुष्ट कर दिया।

दीर्घकाल तक सभी समस्याओं पर गंभीरतापूर्वक मनन करने के पश्चात सिद्धार्थ ने निवृत्ति मार्ग का अवलंबन किया। उन्होंने उन्तीस वर्ष की आयु में गृह-त्याग दिया। अपनी आयु के पैंतीसवे वर्ष में सिद्धार्थ ने बुद्धत्व प्राप्त किया। बोधि प्रप्ति से संबंधित होने के कारण उरूबेला या गया का क्षेत्र 'बोधगया' कहलाया और पीपल का वृक्ष, जिसके नीचे उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ था 'बोधिवृक्ष' के

नाम से प्रख्यात हुआ। उरूबेला में ही बुद्ध ने सर्वप्रथम धर्म का उपदेश दिया।

उनका उपदेश था कि भिक्षु को मध्यम प्रटिपदा या बीच के रास्ते पर चलना चाहिए और सत्य चतुष्ठय को पकड़ना चाहिए : (1) दुख का सत्य, जो जन्म जरा, रोग, मृत्यु, शोक ,विलाप, चिंता, निराशा आदि के रूप में प्रकट होता है। (2)दुख के कारण का सत्य अर्थात जन्म, राग, सुख-भोग की कामना जिससे पुनर्जन्म होता है। (3) दुख से निवृत्ति का सत्य, जिसमें त्याग के भाव में आकर तृष्णा का अंत हो जाता है। (4) उस मार्ग का सत्य, जो दुख की निवृत्ति कराता है, जिसमें सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाक, सम्यक कर्म, सम्यक जीविका, सम्यक व्यायाम या उद्यम, सम्यक ध्यान और सम्यक समाधि सम्मिलित हैं।

''महात्मा गौतम अपने धर्म को मध्यम मार्ग कहते हैं । वे कहते हैं कि अपनी आत्मा और शरीर को व्यर्थ ही मारना और कष्ट देते रहना अनुचित है, आत्म हनन, आत्मपीड़न गलत है। साथ ही, विलास और भोग में पड़े रहकर आसक्तिपूर्ण, आलस्यपूर्ण जीवन व्यतीत करना भी अनुचित है। यदि मनुष्य का ध्यान नित्य सत्य की ओर ही रहे तो दोनों प्रकार के अतिरेक उसके हाथ से नहीं होंगे।''[4]

संघ प्रवेश को बौद्ध धर्म में उपसम्पदा कहा जाता था। उपसम्पदा एक विशिष्ट क्रिया विधि होती थी, जिसे संपादित करने का अधिकार भिक्षुओं को था। संघ में प्रवेश और दीक्षा की यह विधि सरल और सादी होती थी। जब कभी कोई स्त्री या पुरुष संघ में प्रवेश पाने का इच्छुक होता था, तब उसे केश मुंडन कर, पीले वस्त्र धारण कर, स्थानीय संघ के सभापति या प्रधान के सम्मुख बौद्ध धर्म व संघ के प्रति अधोलिखित शपथ ग्रहण करनी पड़ती थी-बुद्धम शरणं गच्छामि। धर्मं शरणं गच्छामि। संघं शरणं गच्छामि।

इसके पश्चात उसे बुद्ध के दस आदेशों या प्रतिज्ञाओं को दुहराना पड़ता था । ये आदेश थे-(1) पर द्रव्य की चाह न रखना। (2) हिंसा न करना। (3) असत्य भाषण न देना। (4) मद्यपान या मादक द्रव्यों का सेवन न करना (5) व्यभिचार न करना (6) संगीत और नृत्य में भाग न लेना (7) अंजन, फूल और और सुवासित द्रव्यों का प्रयोग न करना (8) कुसमय भोजन न करना (9) सुखप्रद शैय्या का उपयोग न करना (10) द्रव्य ग्रहण न करना और न रखना ।

महात्मा बुद्ध की मृत्यु के पश्चात धीरे -धीरे बौद्ध धर्म पतन की ओर बञने लगा। इसका मुख्य कारण रामधारी सिंह दिनकर अपनी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय' में लिखते हैं कि ''आष्टांगिक मार्ग पर चलने का जनता में अब उत्साह नहीं रहा तथा उसे इस बात से निराशा होने लगी कि बुद्ध के मार्ग में भी निर्वाण या मुक्ति की आशा केवल संन्यासी ही कर सकते हैं, साधारण गृहस्थ नहीं।''[5]

'नवबौद्ध' नामक संज्ञा भारत सरकार द्वारा धर्म परिवर्तित कर बौद्ध बने हुए नागरिकों के लिए इस्तेमाल की जाती है। हालाँकि भारतीय बौद्ध अनुयायी 'नवबौद्ध' नामक समुदाय को नहीं मानते हैं, क्योंकि उनके अनुसार पारंपरिक बौद्ध तथा धर्म परिवर्तित बौद्ध नागरिकों की पहचान केवल बौद्ध रहती है।

'नवबौद्धों' को 'अंबेडकरवादी बौद्ध' भी कहा जाता है, क्योंकि उनमें से अधिकतर भीमराव अंबेडकर की प्रेरणा से ही बौद्ध बने हैं। कुल भारतीय बौद्धों में अधिकांश 'नवबौद्ध' संप्रदाय से हैं। 'नवबौद्ध' संप्रदाय महायान, थेरवाद और वज्रयान आदि से भिन्न है, क्योंकि इन तीनों संप्रदायों में बुद्ध के मूल सिद्धांतों के साथ केवल विज्ञानवादी एवं तर्कसंगत सिद्धांतों को ही लिया गया है। इस संप्रदाय में जाति प्रथा, वर्णभेद, लिंगभेद, अंधविश्वास तथा कुरीतियों का कोई स्थान नहीं है।

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने 14 अक्टूबर, 1956 को बौद्ध धर्म ग्रहण किया। उनके साथ ही लाखों की संख्या में अनुसूचित जाति के लोगों ने भी बौद्ध धर्म ग्रहण किया, जिन्हें 'बौद्धों की बाईस प्रतिज्ञाएँ' नाम से लोक ख्याति प्राप्त हुई। (1) हम ब्रह्म, विष्णु और महेश को कभी ईश्वर नहीं मानेंगे और उनकी पूजा कभी नहीं करेंगे। (2) हम राम और कृष्ण को ईश्वर नहीं मानेंगे और उनकी पूजा नहीं करेंगे । (3) हम गौरी, गणपति इत्यादि हिंदू धर्म के किसी भी देवी-देवताओं को नहीं मानेंगे और न ही पूजा करेंगे । (4) ईश्वर ने कभी

अवतार धारण किया है, इस पर हमारा विश्वास नहीं है (5) बुद्ध, विष्णु के अवतार हैं, इसे हम कभी नहीं स्वीकार करेंगे। ऐसे विचार को हम धोखा और झूठा प्रचार समझते हैं ।(6) हम श्राद्ध कभी नहीं करेंगे और न ही पिंडदान करेंगे। (7) हम बौद्ध धर्म के विरूद्ध किसी भी आचरण को नहीं करेंगे। (8) हम कोई भी क्रिया-कर्म, पूजा पाठ ब्राह्मणों से नहीं करवाएँगे। (9) हम इस सिद्धांत में विश्वास करते हैं कि सभी मानव एक समान हैं ।(10) हम समानता की स्थापना के लिए हर संभव प्रयत्न करेंगे। (11) हम बुद्ध के अष्टांग मार्ग का पूरी तरह पालन करेंगे ।(12) हम बुद्ध द्वारा उपदिष्ट पारमिताओं का पूरी तरह पालन करने को वचनबद्ध हैं। (13) हम प्राणीमात्र के ऊपर दया-करुणा का भाव रखेंगे ताकि हृदय का विस्तार हो सके। (14) हम चोरी नहीं करेंगे। (15) हम झूठ नहीं बोलेंगे। (16) हम व्यभिचार नहीं करेंगे। (17) हम शराब नहीं पीएँगे। (18) हम अपने जीवन को बौद्ध धर्म के तीन तत्वों अर्थात ज्ञान, शील और करुणा के आदर्शों में ढालेंगे । (19) हम मनुष्य मात्र के उत्कर्ष के लिए हानिकारक, असमान और नीच मानने वाले हिंदू धर्म का पूरी तरह से परित्याग करते हैं और बौद्ध स्वीकार करते हैं। (20) बुद्ध का धर्म ही सद्धर्म है, ऐसा हमारा विश्वास है । (21) हम यह मानते हैं कि हमारा नया जन्म हो रहा है। (22) हम यह पवित्र प्रतिज्ञाएँ करते हैं कि आज से हम बुद्ध धर्म के अनुसार आचरण करेंगे। अंबेडकर का मानना था कि ''मेरा बौद्ध धर्म न तो महायान होगा और न ही हीनयान होगा , इन दोनों संप्रदायों में कुछ अंधविश्वासी बातें हैं, इसलिए मेरा यह धर्म नवयान बौद्ध धर्म होगा।''

3. निष्कर्ष :

अंतत: यह कहा जा सकता है कि महात्मा बुद्ध के द्वारा एक नया धर्म विकसित हुआ, जिसे 'बौद्ध धर्म' की संज्ञा दी गई। किंतु धीरे-धीरे उसमें समय के साथ विभिन्न मत प्रचलित होते गए, जिससे यह धर्म विकारग्रस्त होता गया। यही इसके पतन का मूल कारण भी बना। दूसरी ओर यदि हम भीमराव अंबेडकर द्वारा आरंभ किए गए 'नवबौद्ध' या 'नवयान' की चर्चा करें तो हम पाएँगे कि इसमें बौद्ध धर्म के वैज्ञानिक एवं तर्कपूर्ण सिद्धांतों को ही लिया गया है, जिस कारण हिंदू धर्म में उपस्थित अनुसूचित जातियाँ भी इस ओर आकर्षित हुईं ताकि हिंदू धर्म में शोषण की शिकार हुई यह जातियाँ बिना किसी भेदभाव के, सम्मान के साथ अपना जीवनयापन कर सकें। ❑

संदर्भ ग्रंथ-सूची :

1. मुखर्जी, राधामुकुंद, हिंदू सभ्यता, पृष्ठ सं.-241,राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन 2006
2. वही
3. लूनिया, बी.ऐन.प्राचीन भारतीय संस्कृति, पृष्ठ सं.266, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा सन 1979
4. मुक्तिबोध, गजानन माधव ,भारत इतिहास और संस्कृति ,पृष्ठ सं. 51-52, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सन 2009
5. दिनकर, रामधारी, संस्कृति के चार अध्याय ,पृष्ठ सं. 146,लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सन 2006

शोधार्थी (पीएच.डी.)
हिंदी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलोंग, मेघालय मोबाइल नंबर- 9899879831
ईमेल: sanzyad@gmail.com

आलेख

असमीया उपन्यास की पृष्ठभूमि

✍ स्मिता रजक

उपन्यास आधुनिक युग का सबसे सशक्त विधा रूप है। भारत में उपन्यास के उदय के लिए अँग्रेजी राज, अँग्रेजी शिक्षा, अँग्रेजी शिक्षाविदों द्वारा लेखन को बढ़ावा दिए जाने, अँग्रेजी पुस्तकों का भारतीय भाषाओं में अनुवाद, छापे की मशीन एवं नए पाठक वर्ग के निर्माण; जैसे कारणों को भूमिका के तौर पर माना जाता है। इन कारणों ने नवीं सदी की आख्यान परंपरा को एक विशेष ढाँचे (अँग्रेजी ढंग) के प्रभाव से पुनर्जीवित किया। आख्यान एक पूर्व निर्धारित रूप और अंतर्वस्तु के खाँचे से संबद्ध है तो उपन्यास इन दोनों खाँचों को तोड़ता हुआ एवं उसकी परंपरा को आधुनिक संदर्भों से निखारता हुआ एक आधुनिक रूपबंध है। यूरोप में औपन्यासिक रूपबंध का इस्तेमाल विशेष संस्कृति, सभ्यता और आर्थिक उन्नति के तहत एक विशेष व्यक्तिवादी मध्य वर्गीय जीवन की अभिव्यक्ति के लिए हुआ। भारत में उपन्यास का उदय यूरोप की तुलना में कुछ देर से हुआ। भारत में उपन्यास किसी विशेष खाँचे में बंधने के बजाय विविध रूपों में दस्तक देता है। मसलन भारतीय उपन्यास का उदय यथार्थवादी, भारतीय एवं दास्तानों के रूप में हुआ।

बिरिंचि कुमार बरुवा अपने 'असमीया साहित्य का इतिहास' नामक पुस्तक में उपन्यास के उदय पर प्रकाश डालते हैं। उनके अनुसार औपनिवेशिक शासन में पाश्चात्य शिक्षण प्रणाली के अंतर्गत पाश्चात्य साहित्य से प्रेरणा प्राप्त कर असमिया उपन्यास अस्तित्व में आया। "The novel in Assamese came in the wake of the Western system of education that was introduced by the British Administration, and it drew its inspiration from the literature of the west."[1]

यह धारणा बहुत कुछ मराठी के आलोचक आर.बी. जोशी जी से मिलती-जुलती है। जोशी जी मराठी उपन्यास के उदय की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हुए इन्ही कारणों का उल्लेख करते हैं।

पद्मावती देवी फुकननी कृत 'सुधर्मार उपाख्यान' (1880 ई.) के विषय में उनका मानना है कि यह प्रथम उपन्यास के रूप में प्रख्यात हुआ। लेकिन हेमचंद्र बरुवा कृत 'बाहिरे रंग-ओंग भीतरे कोरा भातुरी' को उपन्यास के रूप में पहला प्रयास कहते हैं। वे औपन्यासिक ढाँचे के रूप में इसकी प्रशंसा करते हैं, क्योंकि उपन्यास में प्लॉट है। इसके अतिरिक्त तत्कालीन समय के सामाजिक और धार्मिक जड़ता का विरोध होने के कारण उपन्यास की सराहना भी करते हैं। वे पहली बार इस उपन्यास में यथार्थवाद और चरित्र विकास को लक्षित करते हैं। बरुवा जी इस उपन्यास को सामाजिक कहते हैं। "The first attempt at anything approaching a plot, was Hemchandra Barua's Bahire-oang Bhitare Kowa

Bhaturi. As this is a novel with a purpose directed against the social and religious evils of the time, here for the first time realism and characterisation find fuller development."[2] वे ऐतिहासिक उपन्यास की प्रवृत्ति पर विचार करते हुए लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा कृत 'पदुम कुंवरी' को ऐतिहासिक उपन्यास के घेरे में रखते हैं। यह पद्मा और सूरजया की एक दुखान्त प्रेम कहानी है। इस प्रेम कहानी के अतिरिक्त दो विद्रोहियों की भी कहानी चलती है। एक कामरूप नामक प्रख्यात जमींदार है तो दूसरी ओर हरदत्ता और वीरदत्ता (नायिका के पिता और चाचा) हैं। इन जमींदारों की आपसी लड़ाई के साथ-साथ नायक और नायिका की प्रेम कहानी भी आगे बढ़ती है। बरुवा जी उपन्यास के शिल्प की सराहना करते हैं। उपन्यास में वर्णित विद्रोहियों की कथा के बीच प्रेमियों के जीवंत चरित्र को रखने, स्पष्ट विचार और शिल्प की गतिशीलता के लिए उपन्यास को महत्वपूर्ण मानते हैं।

बरुवा जी आगे चलकर पद्मनाथ गोहाईं बरुवा कृत 'भानुमति और 'लाहोरी' पर टिप्पणी करते हैं। उन्हें इन उपन्यासों में ऐतिहासिक व्याख्या की कमी और उपन्यास में किसी भी प्रकार के ऐतिहासिक ढाँचे की भी कमी दिखती है। इसके अलावा उपन्यास में प्लॉट के न होने, चरित्र-विकास की कमी और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के न होने की ओर भी संकेत करते हैं, "Though placed against historical settings, neither novel deals with any history as such. Moreover, neither in plot-development nor in characterisation and psychological analysis do the novels show and distinction."[3]

असमीया उपन्यास के उदय को समग्र दृष्टि से देखने का प्रयास तिलोत्तमा मिश्र जी ने किया है। यह प्रयास उन्होंने मीनाक्षी मुखर्जी द्वारा संपादित पुस्तक Early Novels in India के एक लेख में किया है।

तिलोत्तमा जी, अँग्रेजी शासन के आगमन, व्यापार संबंधी विकास की योजना का आरंभ, मिशनरियों द्वारा स्थानीय लोगों के सहयोग से लेखन कार्य की शुरुआत, छापेखाने की शुरुआत, इतिहास, पाठ्यपुस्तकों एवं पत्रिकाओं के साथ जोड़कर उपन्यास के उदय को देखती हैं। उनके अनुसार 'अरुणोदय' एवं 'मोउ' जैसे आरंभिक दौर की पत्र-पत्रिकाओं से उपन्यास लेखन की शुरुआत हुई।

पद्मावती देवी फुकननी कृत 'सुधर्मार उपाख्यान' (1884 ई.) को तिलोत्तमा जी असमीया का प्रथम साहित्यिक गद्य कहती हैं। जबकि तिलोत्तमा जी यह स्वीकार करती हैं कि कुछ आलोचक इसे उपन्यास कहते हैं, लेकिन तिलोत्तमा जी आगे चलकर इसे नैतिक काल्पनिक (पौराणिक) कथा के रूप में अभिहित करती हैं। 'सुधर्मार उपाख्यान' में मनोरमा नामक स्त्री अपने पति को सही मार्ग पर लाने की चेष्टा करती है। वह अपने पति के बुरे

बर्ताव की निंदा नहीं करती, वरन उसे ईश्वर के समान पूजती है। यह कथा मनोरमा और उसके पति की कथा के साथ-साथ सत्यवन-सुधर्मा और माधवचंद्र-लीलावती की कथा भी है।

तिलोत्तमा जी 'सुधर्मार उपाख्यान' के शिल्प में कई प्रकार की त्रुटियाँ देखती हैं। उनका मानना है कि चरित्र को जीवंत रूप में चित्रित नहीं किया गया है। वे भौतिक वातावरण के वर्णन का अभाव चिह्नित करती हैं, जिसमें यथार्थ का चिह्न नहीं मिलता है। उनके अनुसार पद्मावती उन स्थानों के वर्णन को छोड़ देती हैं, जिस स्थान पर मनोरमा को जंगल में छोड़ दिया जाता है। उस स्थान का वर्णन वास्तविक रूप में प्रकट नहीं हुआ है बल्कि मिथ के रूप में है जहाँ शिकारी, साधु और आश्रम है। इसके अतिरिक्त जिस समय नाव उलट जाती है, उस समय मुश्किल से दो वाक्य सामने आते हैं। तिलोत्तमा जी लेखिका के अनुभव की कमी की ओर भी इशारा करती हैं; उनका मानना है कि लेखिका उच्च मध्य वर्गीय महिला को सुरक्षा प्रदान करती हैं। इसीलिए जोखिम भरे जीवन को दर्शाने का अनुभव उनके पास नहीं है। इतना ही नहीं, वह आगे कहती हैं कि लेखिका का अनुभव धार्मिक पुस्तकों तक सीमित है। इसीलिए जंगल, जोखिम भरे जीवन और नदियों का वर्णन नहीं कर पाती हैं।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जाए तो 'सुधर्मार उपाख्यान' में तिलोत्तमा जी जीवंत चरित्र और बाह्य जगत के वर्णन का अभाव देखती हैं। अत: वे उपन्यास को पौराणिक या नैतिक काल्पनिक कथा भर मानती हैं। Padmavati's fictional narrative remains at the level of a moral fable.[4]

तिलोत्तमा जी 'सुधर्मार उपाख्यान' के पश्चात तीन उपन्यासों के प्रकाशन की चर्चा करती हैं, जो पाश्चात्य ढाँचे के निकट ठहरते हैं। इनमें लक्ष्मीनाथ बेजबरुवा कृत 'पदुम कुंवरी' (1890 ई.), पद्मनाथ गोहाईं बरुवा कृत 'भानुमति' (1891 ई.) और 'लाहोरी' (1892 ई.) प्रमुख हैं। समानता की बात की जाए तो सामाजिक समानता ही इन उपन्यासों को 'सुधर्मार उपाख्यान' से जोड़ती है।

तीनों ही उपन्यास ऐतिहासिक रूप से अतीत की कथा हैं। केंद्रीय विषय प्रेम कहानी है। 'भानुमति' और 'पदुमकुंवरी' का अंत दुखांत है तो लाहोरी का अंत मिलन के रूप में हुआ है।

जिस समाज में स्त्रियों का विवाह कम उम्र में हो जाया करता है, ऐसे समाज में युवाओं की प्रेम कहानी को दिखाया गया है। नायक-नायिका मध्यवर्गीय परिवार की नैतिकता का मान रखते हैं। प्रथम दो उपन्यास के नायक, ज्यों ही यह देखते हैं कि उनकी प्रेमिकाओं का विवाह निकट आ गया है, वे भाग खड़े होते हैं।

उपन्यास में कुछ खामियों को चिह्नित करते हुए तिलोत्तमा जी कहती हैं कि इन उपन्यासों में जातिगत-वर्गगत बंधन के परे जाकर लोक जीवन के साहसिक कार्यों से युक्त सच्चा रूप लाने की असमर्थता देखी गई है। प्रेम और विवाह जैसे विषय बांग्ला उपन्यासों के अनुकरण पर लिखे गए हैं। वे इन उपन्यासों में बिहू संगीत और नृत्य के अभाव को रेखांकित करती हैं। इस अभाव का कारण स्पष्ट करती हुई तिलोत्तमा जी कहती हैं कि ऐसा इसलिए, क्योंकि उच्च वर्ग ग्रामीण लोक संस्कृति के विरूद्ध थे। इसलिए उपर्युक्त लेखकों ने इन दृश्यों के वर्णन से अपनी लेखनी को रोके रखा। "The inability of the early novelists of Assam to beyond the bounds of their class and caste boundaries and to present bold and realistic pictures of the lives of ordinary folk, is thus the greatest weakness of these novels."[5]

तिलोत्तमा जी रजनीकांत बरदलै कृत 'मिरि जियरी' (1894 ई.) और 'मनोमती'(1900 ई.) उपन्यासों का उल्लेख भी करती हैं।

उपन्यास में औपनिवेशिक कानून-व्यवस्था और मिरि-जनजाति की कानून-व्यवस्था के बीच सामाजिक न्याय पीस कर रह जाता है।

तिलोत्तमा जी बरदलै जी की रचनाओं को पूर्ववर्ती औपन्यासिक कृतियों से भिन्न मानती हैं। वे इस मायने में भिन्न मानती हैं कि पूर्ववर्ती लेखकों ने जहाँ मध्य वर्गीय जीवन को आँकने की कोशिश की, वहीं बरदलै जी ने असम के ग्रामीण जीवन को रखने का प्रयास किया है।

तिलोत्तमा जी असमीया का पहला उपन्यास किसे मानती हैं? इस पर उनकी कोई टिप्पणी नहीं मिलती है। आलोचकों ने असमीया उपन्यास की पृष्ठभूमि निर्मित करते हुए कई तत्वों को रेखांकित किया है। ब्रिटिश शासन और उनकी शिक्षा प्रणाली, पत्र-पत्रिकाओं की शुरुआत या फिर उपन्यास का अँग्रेजी ढाँचा आदि। ये सारे तत्व असमीया उपन्यास की पृष्ठभूमि निर्मित करने में एक अहम भूमिका रखते हैं। इसके बावजूद असमीया उपन्यास अपनी प्रकृति और समस्याओं को रखते हुए अँग्रेजी ढाँचे से अलग एक जातीय मौलिक रूप भी रखता हुआ चलता है। ❑

संदर्भ :

1. History of Assamese Literature- Birinchi Kumar Barua, Sahitya Akademi, First published: 1964, re printing: 2016, पृष्ठ संख्या- 167
2. वही, पृष्ठ संख्या-167
3. वही, पृष्ठ संख्या-167-168
4. Early Novels In India- Edited by Meenakshi Mukherjee- Sahitya Akademi, First published, 2002, पृष्ठ संख्या-14
5. वही, पृष्ठ संख्या-18

शोधार्थी, प्रेसिडेंसि विश्वविद्यालय, कोलकाता
मोबाइल नं 9331514136
ईमेल: rajaksimita@gmail.com

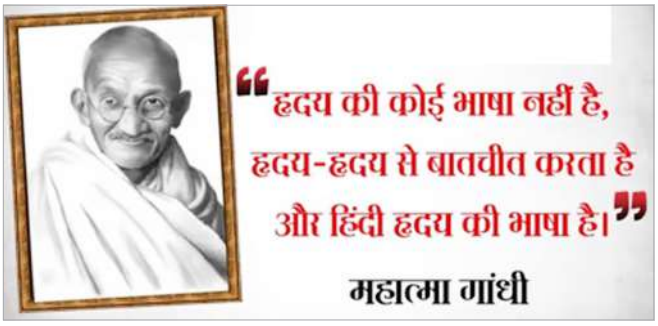

विचित्र नाटक में युद्ध वर्णन एवं ऐतिहासिकता

✍ डॉ. ज्योति कौर

इतिहास के पृष्ठों में गुरु गोविंद सिंह जी एक रणनीति कुशल योद्धा एवं सर्वस्व त्यागी महात्मा के रूप में प्रख्यात हैं। गुरु गोविंद सिंह जी मुख्य रूप से वीर रस के कवि थे। किंतु इन्होंने वीर काव्यों की रचना किसी लोभ के वशीभूत होकर नहीं की। चारण कवियों के समान अपने आश्रयदाताओं का प्रशस्तिपूर्ण गान और अतिरंजित, अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन गुरु गोविंद सिंह जी का जीवन-उद्देश्य नहीं था। वह तो अकाल पुरख की कृपा से निर्बल एवं पीड़ित की सहायता हेतु धर्मयुद्ध करने का चाव रखते थे। गुरु गोविंद जी उन कवियों में से नहीं थे, जो सुरक्षित स्थानों पर बैठकर वीर काव्यों की संरचना कर डालते हैं। गुरु गोविंद सिंह जी का युद्ध चित्रण स्वानुभूतिपूर्ण है; उन्हें स्वयं अपने जीवनकाल में धर्म की रक्षा हेतु एवं परिस्थितिवश जो युद्ध करने पड़े उन सबका विवरण एवं सजीव वर्णन उन्होंने अपनी आत्मकथा 'विचित्र-नाटक' में किया है।

'विचित्र-नाटक' में अनेक युद्धों का वर्णन है, जिनमें लव-कुश युद्ध वर्णन को छोड़कर शेष सभी युद्ध ऐतिहासिक हैं। इन्हीं युद्धों के वर्णन के कारण कृति में ऐतिहासिकता का समावेश भी हो गया है। गुरु गोविंद सिंह जी का संपूर्ण जीवन ही युद्धों से ओत-प्रोत रहा। उन्होंने अपने जीवन में जो युद्ध किए और जिनका अंकन 'विचित्र-नाटक' में गुरु जी ने स्वयं किया वे इस प्रकार हैं-

लव कुश युद्ध वर्णन :

गुरु गोविंद सिंह जी ने अपनी वंशावली प्रस्तुत करते हुए बीच में लव-कुश का उल्लेख आने पर उनके वंशजों में हुए भीषण युद्ध का भी 'विचित्र-नाटक' में वर्णन किया है।

लव एवं कुश श्री रामचन्द्र जी की संतान थे। इन दोनों ने लाहौर एवं कसूर नामक दो नगरों का निर्माण किया। फिर बाद में लोभ एवं अहंकार के कारण इन दोनों भाइयों की संतानों में आपस में झगड़ा हो गया। इसमें लाहौर के निवासी हारकर सनौढ़ देश में जाकर निवास करने लगे। वहाँ के नृप की कन्या से विवाह करने पर जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम सोढ़ीराय रखा, इन्हीं की संतान ही आगे चलकर सोढ़ी कहलाने लगी। इन सोढ़ियों ने पुराना वैर स्मरण कर पुन: लाहौर पर अपना अधिकार करना चाहा। कसूर निवासी जो कि अब लाहौर पर राज्य करते थे वह लाहौर छोड़ने को तैयार नहीं थे। इसी कारण लव एवं कुश के वंशजों में घोर युद्ध हुआ, जिसका गुरु गोविंद सिंह जी ने सुंदर वर्णन किया है। उदाहरणस्वरूप कुछ स्थल उद्धृत हैं-

तहाँ बीर बंके बकै आप मद्धं।
उठे शस्त्र लै लै मचा जुद्ध सुद्धं।
काहूं खपरी खोल खण्डे अपारं।
नचै बीर बैताल डउरू डकारं।। 3/2

कहूं ईस सीसं पुऐ रूण्ड मालं।
कहूं डाक डउरू कहूंकं बितालं।।
चवी चावडीयं किलंकार कंकं।
गुथी लुत्थ-जुत्थं बहे बीर बंकं।। 3/3

लव एवं कुश के वंशजों में अत्यंत भीषण युद्ध हो रहा है। सभी शूरवीर योद्धा सजोश एक-दूसरे को ललकारते हुए गरज रहे हैं-

महाबीर गज्जे।। सुणै मेघ लज्जे।।
झंडा गड गाढ़े।। मंडे रोस बाढ़े।। 3/6

योद्धा क्रोध में आकर अपने विपक्षियों के सिर काटे डाल रहे हैं-

सरोख सूर साजियं। बिसार संक बाजियं।।
निसंक शस्त्र मारही। उतार अंग डारही।। 3/10
काढ़ू न कान राखहीं। सु मार मार भाखहीं।।
सु हांक हाठ रेलयं। अनंत शस्त्र झेलयं।। 3/11

युद्धस्थल की स्थिति वीभत्सात्मक है। कहीं क्षत-विक्षत शव पड़े हैं तो कहीं बैताल पैशाचनियाँ आदि फिर रही हैं, तो कहीं माँस खाने वाले प्रेत हँस रहे हैं। भयंकर युद्ध हो रहा है। ऐसा लगता है मानो प्रलय काल के बादल गरज रहे हों।

इस प्रकार मोह, लोभ एवं अहंकार के कारण लव एवं कुश के वंशजों में भीषण युद्ध हुआ, जिसमें सोढ़ी जीत गए और कुश के वंशजों की पराजय हुई। अनेक कुश वंशियों की तो वहीं युद्ध-क्षेत्र में ही मृत्यु हो गई। जो बच रहे थे उन्होंने जाकर अनेक वर्षों तक काशी में निवास किया एवं वेदों का अध्ययन किया। यही कुश वंशीय ही वेदों का अध्ययन करने के कारण बाद में बेदी कहलाए। उक्त युद्ध वर्णन काल्पनिक ही है, क्योंकि इसका उल्लेख किसी प्राचीन ग्रंथ में नहीं मिलता। मिलता होता तो यह आख्यान अति प्रचलित होता। काल्पनिक होते हुए भी इस स्थल का इतना महत्व अवश्य है कि इन्हीं वंशजों से 'बेदियों' की उत्पत्ति बताई गई है।

भंगाणी युद्ध-वर्णन :

गुरु जी ने पहाड़ी राजाओं के साथ हुए युद्ध का 'विचित्र-नाटक' में 'भंगाणी युद्ध वर्णन' नाम से वर्णन किया है। यह गुरु जी के जीवन का प्रथम युद्ध था।

श्रीनगर के राजा फतहशाह की सुपुत्री का विवाह विलासपुर के राजा भीमचंदके पुत्र के साथ होना निश्चित हुआ। उसने गुरु जी को भी निमंत्रण दिया, परंतु गुरु गोविंद सिंह जी ने उसे उत्तर में कहलवाया कि हमारे साथ बहुत से सिक्ख हैं और तुम्हारे घर शादी का कार्य है, राजा भीमचंद को बारात लेकर आनी है। अत: हम स्वयं न आकर अपने एक मुसाहिब को भजेंगे। इसलिए गुरु जी ने दीवान नंद चंद को सवा लाख का तंबोल देकर अनेक सिक्खों सहित विदा किया।

इन्हीं दिनों 'दामले गांव' के पाँच सौ पठान जिनके पाँच सरदार निजामत खान, भीखन खान आदि औरंगजेब के अत्याचार से पीड़ित होकर अपने पीर बुद्धुशाह की शरण आए। बुद्धुशाह उन्हें गुरु जी के पास लाया और शरणागत वत्सल गुरु जी ने सारे पठानों को अपने यहाँ शरण दी।

भीमचंद प्रारंभ से ही सतगुरु जी का शत्रु था। जब उसे ज्ञात हुआ कि उसके बेटे के विवाह में गुरु गोविंद सिंह जी का भी तंबोल है तो उसने तुरंत फतह शाह को संदेश भेजा कि अगर वह गुरु जी का तंबोल वापिस भेजकर उनसे शत्रुता मोल नहीं लेगा तो वह बारात लेकर वापिस जा रहा है। अब फतह शाह दुविधा में पड़ गया। एक ओर गुरु जी और दूसरी ओर अपनी बेटी का दरवाजे पर बैठना। वह गुरु जी से शत्रुता नहीं करना चाहता था, परंतु अंत में विवश होकर फतहशाह ने गुरु जी का तंबोल वापिस भेजना स्वीकार कर लिया।

ऐसे समय जब 22 स्थानों के राजा एकत्रित हों और सभी गुरु जी के विरोधी हों, उन्होंने एक योजना बनाई कि सिक्खों की गणना तो अत्यल्प है, अत: हम इनको

लूटकर भगा देते हैं और इनका तंबोल भी वापिस नहीं करते। उधर दीवान नंदचंद को भरी सभा में गुरु जी का तंबोल वापिस कर देना अच्छा नहीं लग रहा था और अब जब उन्हें सूचना मिली कि यह तंबोल वापिस ही नहीं भेजा जा रहा, अपितु इसे लूट लेने की भी योजना बनाई जा रही है तो उन्होंने अपने साथ आए सिक्खों को संकेत किया और सब ने इशारा समझते हुए फतहशाह की वह खाट जिस पर सारा बहुमूल्य सामान पड़ा था, लूटी और वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गए। पहाड़ियों ने उनका पीछा तो किया, परंतु उन्हें पकड़ नहीं पाए। सिक्ख गुरु जी के तंबोल और लूट के माल के साथ गुरु चरणों में उपस्थित हुए और वहाँ का सारा वृत्तांत उन्हें ज्यों-का-त्यों कह सुनाया। गुरु जी सिक्खों की पहली जीत पर बहुत प्रसन्न हुए।

नाहन आकर गुरु गोविंद सिंह जी ने पहले पावंटा नगर बसाया और वहाँ पर यमुना नदी के किनारे एक छोटा-सा किला भी बनाया-

देस चाल हम ते पुनि भई।
शहर पांवटा की सुधि लई।।
कालिन्द्री तटि करे बिलासा।
अनिक भांति के पेख तमासा।। 8/2

अब गुरु जी को प्रतीत होने लगा कि पहाड़ी राजाओं ने आक्रमण तो अवश्य ही करना है। पहले आनंदपुर में युद्ध होते-होते रुक गया, किंतु अब तो युद्ध होना निश्चित ही है। अत: अच्छा है जो पावंटा नगर में युद्ध न हो। इसलिए गुरु जी ने पावंटा नगर से सात मील पूर्व 'भंगाणी गांव' में जा निवास किया और युद्ध का पूरा मोर्चा बनाकर पहाड़ी राजाओं की प्रतीक्षा करने लगे। उनकी सेना में पाँच योद्धा वीर, संगी सिंह, जीतमल, गुलाब, गंगाराम और हरीचंद थे। भंगाणी गांव में पहाड़ी राजाओं के साथ युद्ध होने के कारण इस युद्ध का नाम भंगाणी युद्ध है।

जब युद्ध का समय आया तो पाँच सौ पठान जो बुद्धुशाह ने गुरु जी की शरण में भेजे थे, वह भी पहाड़ी राजाओं के पक्ष में जाकर मिल गए और उनके पक्ष से युद्ध करने लगे। युद्ध में कृपाल दास उदासी ने ह्यात खान को मार डाला इसके लिए गुरु जी ने सुंदर उत्प्रेक्षा दी है-

कृपाल कोप्यं कुतको सम्भारी।
हठी खान हय्यात के सीस झारी।।
उठी छिच्छ इच्छं कढा मेझि जोरं।
मनो माखनं मट्टकी कान्ह फोरं।। 8/7

तब निजामत खान कृपाल दास पर टूट पड़ा। उसके वार को रोकने के लिए दीवान नंदचंद जी युद्ध क्षेत्र में उतरे। उन्होंने पहले बरछी चलाई फिर तलवार से वार किया, पर वह भी टूट गई। फिर कटार से काम लिया तो तुरकों ने आकर दीवान जी को घेर लिया। इनकी मदद के लिए मामा कृपाल चंद जी आए और उनको मार भगाया। गुरु जी के शब्दों में-

तहां मातलेयं कृपालं क्रूद्धं।
छक्यो छोभ छत्री करयो जुद्ध सुद्धं।।
सहे देह आपं महाबीर बानं।
करो खान बानीन खाली पलाणं।। 8/9

इतने में साहिब चंद, लाल चंद, दयाराम और संगोहशाह पहुँच गए, जिन्होंने विपक्ष के योद्धाओं को नाकों चने चबाए। गोपाल चंद गुलेरिया भी पास ही खड़ा था, वह भी प्रकोप से बच न सका, नंद चंद जी ने उसका भी सिर शरीर से विमुक्त कर दिया। इससे हरीचंद हंडूरिया क्रोधित होकर धनुष वाण लेकर युद्ध करने लगा। इतने में जीतमल ने हरीचंद को बरछी मारकर मूर्च्छित कर दिया। इस प्रकार भंगाणी गांव में अपार युद्ध हुआ, जिसकी प्रचंडता का गुरु जी ने इस प्रकार वर्णन किया है-

खुलै खान खूनी खुरासान खग्गं।
परी शस्त्र धारं उठी झाल अग्गं।।
भई तीर भीरं कमाणं कड़क्के।
गिरे बाज ताजी लगे धीर धक्के।।17।।
बजी भेरि भुंकार धुक्के नगारे।
दुहूं ओर ते बीर बंके बकारे।।
करे बाहु आघात शस्त्रं प्रहारं।
डकी डाकणी चांवडी चीत्कारं।।18।।
कहा लगे बरनन करों, मच्यौ जुद्ध अपार।
जे लुज्झे जुज्झे सबै, भज्जे सूर हजार।।19।।

8/17, 18, 19

हरीचंद को मूर्च्छित होता देखकर केसरी चंद जसवालिया, मधुकर शाह डढवालिया और गाजीचंद सेना लेकर युद्ध करने लगे। एक ओर संगोशाह और निजामत खान लड़ रहे थे, इन दोनों के वार एक जैसे और एक समय ही ऐसे पड़े कि दोनों एक ही समय शहीद हो गए।

अपनी भुआ के लड़के संगोशाह को शहीद होते देखकर गुरु गोविंद सिंह जी ने भी धनुष बाण संभाला और युद्ध क्षेत्र में उतरे–

लखे साह संग्राम जुज्झे जुझारं।
तवं कीट बाणं कमाणं सम्भारं।।
हनयो एक खानं ख्यालं खतंगं।
डसयो शत्रु को जान श्यामं भुजंगं।। 8/24

गुरु जी ने एक तीर से भीखन खान पर प्रहार किया, वह घायल होकर भाग गया, परंतु गुरु जी ने दूसरे तीर से उसके घोड़े को गिरा दिया, घोड़े के मर जाने से वह युद्ध क्षेत्र से भाग गया।

दूसरी ओर हरीचंद हंडूरीए ने धनुष बाण पकड़ा और गुरु जी के ऊपर तीर छोड़े, दो तीर तो ऐसे ही कान के पास निकल गए, पर तीसरे तीर ने पेटी के पास से निकलते हुए गुरु जी के शरीर पर निशान बना दिया। उसके लगते ही गुरु जी का वीर रस जागृत हो गया। गुरु जी ने पहले तीर से ही हरीचंद को धराशाई कर परलोक में भेज दिया और फिर तीरों की वर्षा कर दी, जिसके भय से सभी पहाड़िए भाग गए और गुरु जी विजय के नगाड़े बजाते हुए अपने मोर्चे पर आ गए और वहाँ से फिर आनंदपुर आए। इस प्रकार गुरु गोविंद सिंह जी की भंगाणी युद्ध में विजय हुई–

रणं त्याग भागे। सबै त्रास पागे।।
भई जीत मेरी। कृपा काल केरी।।34।।
रणं जीत आए। जयं गीत गाए।।
धनं धार बरखे। सबै सूर हरखे।।35।।
जुद्ध जीत आए जबै, टिकै न तिन पुर पांव।।
काहलूर में बांधियो, आन आनन्दपुर गांव।।36।।

8/34, 35, 36

आनंदपुर आकर गुरु जी ने युद्ध में जान की बाजी लगाकर लड़ने वालों को पुरस्कार दिए और भागने वाले कायरों को दंड देकर उत्तम राजा का कार्य किया। उन्हीं के शब्दों में–

जे जे नर तहिं ना भिरे,
दीने नगर निकार।।
जे तिह ठौर भले भिरे,
तिनै करी प्रतिपार।।37।।
बहुत दिवस इह भांति बिताए,
संत उबार दुष्ट सब घाए।
टांग टांग करि हने निदाना,
कूकर जिमि तिन तजै पराना।।38।।

8/37, 38

नादौन युद्ध वर्णन :

नादौन का युद्ध गुरु जी के जीवन का द्वितीय युद्ध था। जिन दिनों औरंगजेब दक्षिण में गोलकुंडा के राजा तानाशाह से युद्ध करने में व्यस्त था; उन दिनों पंजाब का एक भी पैसा दिल्ली के खजाने में नहीं पहुँचा। उस समय सभी प्रांतों की दशा शोचनीय थी। जब औरंगजेब ने लाहौर के नवाब दिलावर खान से कई करोड़ रूपया तीन सालों के मामले के रूप में माँगा; तब दिलावर खान ने उत्तर में बताया कि पहाड़ी राजाओं से तीन साल से मामला नहीं आया। तब औरंगजेब ने जम्मू के वायसराय मीयां खान को राजकर वसूलने का कार्यभार सौंपा। मीयां खान ने अपने भतीजे अलिफ खाँ को फौज देकर पहाड़ी राजाओं से कर वसूलने के लिए भेजा। अलिफ खाँ ने सबसे पहले कृपाल चंद को जाकर घेरा। उसने युद्ध के भय से बहुत सी भेंट दी और राजनीति के दाँव-पेंच अपनाते हुए उससे कहा कि यहाँ का सबसे बड़ा व धनवान राजा भीमचंद है, पहले आप उससे कर वसूल कर लो तो बाकी के राजा आपको स्वयं घर बैठे ही कर पहुँचा देंगे। अलिफ खाँ नादौन की ओर चल पड़ा। उसने भीमचंद को संदेश भेजा कि तीन साल का जजिया कर दें नहीं तो युद्ध के लिए तैयार हो जाएं। भीमचंद ने जजिया देने की अपेक्षा युद्ध करना अधिक उचित समझा और सभी राजाओं को बुलाकर युद्ध की पूरी तैयारी कर ली।

भीमचंद चाहे गुरु जी का विरोधी था, परंतु संकट के समय रक्षा के लिए उसने गुरु जी को अत्यंत नम्रता भरा

पत्र डाला और शरणागतवत्सल गुरु जी समस्त पुरानी शत्रुता को विस्मृत कर उसकी सहायता के लिए नादौन पहुँच गए। भीमचंद ने गुरु जी के पहुँचने से पहले ही नवरस के टीले पर लकड़ी का किला बनवा लिया था और युद्ध प्रारंभ हो चुका था। प्रचंड तेज वाले राजसिंह और रामसिंह, भीमचंद के प्रमुख सहायक थे। दूसरी ओर से कृपालचंद ने आगे बढ़कर अनेक शूरवीरों को पीछे हटा दिया। इस प्रकार दोनों ओर के योद्धा एक दूसरे पर वार करने में तत्पर थे–

जुज्झंत जुआण।। बाहै कृपाण।।
जिय धार क्रोध।। छड्डे सरोघ।।9।।
लुज्झे निदान।। तज्जंत प्राण।।
गिर परत भूमि।। जणु मेघ झूम।।10।।

9/9, 10

स्वयं गुरु जी ने भी नादौन के युद्ध में तीर चलाए–

तवं कीट तौ लौ तुफंगं सम्भारो।
हृदय एक रावंत के तक्कि मारो।।
गिरिओ झूम भूमै करयो जुद्ध सुद्धं।
तऊ मारि बोल्यो महा मानि क्रुद्धं।। 9/17

अंत में अलिफ खाँ स्वयं ही नदी से पार चला गया और अंधेरी रात के समय आग जलाकर नगाड़े बजते छोड़कर स्वयं भाग गया–

भई राति गुबार को अरध जामं।
तबै छोरिगे बार दे वै दमामं।। 9/21

इधर भीमचंद ने विजय की प्रसन्नता में गुरु जी को आठ दिन अपने पास रखा। फिर गुरु जी विदा लेकर आनंदपुर पहुँच गए। आनंदपुर वापिस आते हुए गुरु जी कुछ देर के लिए रास्ते में आलसून गाँव में ठहरे। वहाँ के निवासी सदैव सिक्खों को तंग किया करते थे। आदतानुसार उस दिन भी उन्होंने सिक्खों को भली-बुरी सुनानी प्रारंभ कर दी। इससे क्रोधित होकर दीवान नंद चंद ने कुछ सिक्खों को साथ लेकर उन पर हमला कर दिया। पल भर में ही उन्होंने सारे गाँव को लूट लिया। फिर यहाँ से चलकर खालसा समूह सुखपूर्वक आनंदपुर पहुँचा–

आलसून कहि मारिकै,
इह दिसि कियो पयान।
भान्ति अनेकन के करे,
पुर अनन्द सुख आन।। 9/24

खानजादे को आगमन :

दिलावर खान पराजित होने से कुपित था। अब उसने अपने पुत्र रूस्तम खान को आनंदपुर जजिया लेने के लिए भेजा। वह रात के समय नदी के तीर पर पहुँचा। इस भेद के ज्ञात होने पर गुरु जी ने अपने ड्योढ़ी सरदार आलम सिंह को सचेत किया। गुरु जी के रणजीत नगाड़ा बजाने पर सिक्ख सेना चमकती तलवारें लेकर सतलुज नदी के किनारे एकत्रित हो गई; बंदूकें चलनी प्रारंभ हो गईं, दिलावर खान का पुत्र दूर से ही सेना देखकर भाग गया–

बजी भेर भुंकार धुंके नगारे।
महाबीर बानैत बंके बकारे।।
भए बाहु आघात नच्चे मरालं।
कृपासिंधु काली गरज्जी करालं।।5।।
इते बीर गज्जे भये नाद भारे।
भजे खान खूनी बिना शस्त्र झारे।।6।।

10/5, 6

रास्ते में बरवा गाँव को लूटकर शहजादा भलान जा पहुँचा। इसके लिए गुरु जी ने सुंदर उपमा की नियोजना की है।

तव बल ईहां न पर सकै बरवा हना रिसाइ।
सालन रस जिम बानीयो रोरन खात बनाइ।।10/10

हुसैनी युद्ध कथन :

हुसैन खान के साथ हुआ युद्ध गुरु गोविन्द सिंह जी के जीवन में हुए प्रमुख युद्धों में से एक है। जब दिलावर खान का पुत्र रूस्तम खान बिना युद्ध किए ही भागकर लाहौर पहुँचा तो उसकी ऐसी शर्मनाक हालत देखकर दिलावर खान गुस्से में आगबबूला हो उठा। तब हुसैनी खान ने जोश में आकर कहा कि मैं गुरु जी से युद्ध करने जाऊँगा और वह दो हजार सैनिकों की सुसज्जित सेना लेकर गुरु जी से युद्ध करने के लिए चल पड़ा। गुरु जी के शब्दों में–

गयो खानजादा पिता पास भज्जं।
सकै ज्वाब दै ना हने सूर लज्जं।।

तहां ठोक बाहां हुसैनी गरज्जियं।
सबै सूर लै के सिलासाज सज्जियं।। 11/1

पहाड़ों में पहुँचते ही हुसैन खान ने लूटमार प्रारंभ कर दी, पहले मधुकर शाह और डढ़वाल के राजा को परास्त किया फिर दूण को जाकर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। इस प्रकार मार-धाड़ करता, हुसैन खान सीधा कहलूर की ओर जा निकला। इसके वहाँ पहुँचने की सूचना पाकर भीमचंद कहलूरीआ और कृपालचंद कटोचीआ नजराना लेकर उससे आन मिले। इससे गुलाम हुसैन खान तो रूस्तमे हिंद से भी अधिक अहंकारी हो गया। इसके लिए गुरु गोविन्द सिंह जी ने सुंदर उपमा दी है-

जैसे रवि के तेज से रेत अधिक तपताय।
रवि बलि छुद्र ना जानई आपन ही गरबाय।। 11/7

हुसैन खान के आनंदपुर जाते हुए अभी रास्ते में एक ही पड़ाव आया था कि आगे गुलेर का राजा गोपाल चंद चार हजार रुपया नजराना लेकर उसके पास आया। हुसैन खान लालच में आ गया और उसने उससे और धन माँगते हुए कहा कि दस हजार से एक कौड़ी भी कम नहीं लूँगा। राजा गोपाल चंद जब सहमत न हुआ तो हुसैन खान की सेना ने गुलेर किले को चारों आरे से घेर लिया। पंद्रह पहर तक घेरा डाले रखा, अन्न का एक दाना भी अंदर नहीं जाने दिया। दुखी होकर राजा गोपाल ने गुरु गोविंद सिंह से युद्ध के लिए सहायता की प्रार्थना की। गुरु जी ने संगतीआ सिंह को सेना सहित उसकी सहायता के लिए भेजा-

सिंह संगतीआ तहा पठाए।
गोपालै सु धरम दै लियाए।। 11/13

संगतिआ ने पहले तो दोनों, हुसैन खान और गोपाल चंद की संधि कराने की चेष्टा की; किंतु सफल न हो सका। घोर युद्ध प्रारंभ हो गया। गुरु जी ने युद्ध की प्रचंडता का वर्णन इस प्रकार किया है-

बज्जे निसंग।। गज्जे निहंग।।
छुट्टै कृपान।। लिट्टै जुआन।।
तुप्पक तड़ाक।। कैबर कड़ाक।।
सैहथी सड़ाक।। छौही छड़ाक।।
गज्जै सुबीर।। बज्जे गहीर।।
बिचरे निहंग।। जैसे पिलंग।।
हुक्के किकाण।। धुक्के निसाण।।
बाहै तड़ाक।। झल्लै झड़ाक।।

11/19-22

इस घोर संग्राम में जब हुसैनी के पक्ष के अनेक योद्धा मौत के मुँह में पहुँच गए तो हुसैनी स्वयं युद्ध क्षेत्र में उतरा। उसने अनेक योद्धाओं को काल का ग्रास बना दिया। किंतु अंत में वह भी वहीं युद्ध-क्षेत्र में ही लड़ते-लड़ते शहीद हो गया। हुसैन खान सहित हरी सिंह और कृपाल चंद आदि योद्धे एक ओर से और दूसरी ओर से संगतीआ सिंह भी शहीद हो गए। भीमचंद हुसैन खान आदि के मरने से अपनी सेना लेकर भाग गया। इसके लिए गुरु जी ने सुंदर उपमा दी है-

खान हुसैन कृपाल के हिम्मत रण जूझंत।
भाजि चलै जोधा सबै जिम दे मुकुट महंत।। 11/66

इस प्रकार युद्ध में राजा गोपाल चंद को विजय प्राप्त हुई। राजा गोपाल ने आनंदपुर जाकर गुरु जी को अनेक उपहार दिए और उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट की।

जुझार सिंह युद्ध वर्णन :

हुसैन खान के मरणोपरांत शाही फौज लाहौर पहुँची, तब सूबेदार दिलावर खान ने युद्ध का वृत्तांत श्रवण कर गुस्से से आगबबूला होकर रूस्तम खान को पुन: आक्रमण के लिए भेज दिया। इधर से योद्धा जुझार सिंह और राजा चंदनराय सेना लेकर आगे बढ़े । उन्होंने बलहान अथवा भलान नामक गांव को घेरकर वहाँ से शाही सेना को खदेड़ डाला। तब भीमचंद ने सेनापति गजसिंह तथा परमानंद को सेना सहित रवाना किया। जुझार सिंह युद्ध भूमि में झंडे की भाँति अटल एवं दृढ़ रहा-

उतै जुझार सिंह भयो आडा।।
जिम रन खम्भ भूमि रन गाडा।। 12/3

इस प्रकार दृढ़तापूर्वक युद्ध करते हुए अनेक शूरवीरों का वध कर जुझार सिंह वहीं युद्ध में शहीद हो गया और चंदन राय की भी युद्ध में ही मृत्यु हो गई।

शाहजादे का आगमन :

जब दिलावर खान की फौज अनेक बार पराजित होकर वापिस चली गई तो इस बात की सूचना दक्षिण में औरंगजेब को भी मिली। तो उसने अपने बड़े लड़के

मुअज्जम खान (बहादुर शाह) को युद्ध निमित्त भेजा। उसका आगमन सुनकर पहाड़ी लोग भयभीत हो घरों को छोड़कर पहाड़ों में जा छुपे। गुरु जी के शब्दों में-

कितक लोक तजि संगि सिधारे।।
जाय बसै गिरवर जहिं भारे।।
चित मूजीयन को अधिक डराना।।
तिनै उबार न अपना जाना।। 13/3

अनेक पहाड़िए गुरु जी से भी कहने लगे कि इस विपद स्थिति में कुछ दिन अलग होकर बैठ जाओ; शाही सेना के सामने आने की क्या आवश्यकता है? परंतु गुरु गोविन्द सिंह जी तो उस अकाल पुरुष के भरोसे से सुमेरू पर्वत की भाँति उसी स्थल पर डटे रहे। परंतु अनेक पहाड़िए और हलवा खाने वाले मसंद गुरु जी से आँखें चुराकर पहाड़ों में जा बसे।

दूसरी ओर जो शहजादा आनंदपुर आ रहा था, वह स्वयं तो लाहौर चला गया और एक अहदीआ को आनंदपुर की ओर प्रस्थान करने के लिए कह गया। वह मिर्जा जाफर बेग नामक अहदीआ बहुत नेक आदमी था। तब उसने आनंदपुर का दृश्य देखा तो गुरु चरणों का सेवक हो गया; और गुरु से बेमुख होकर (गद्दारी करके) भाग गए व्यक्तियों को दंडित किया। जो गुरु जी से गद्दारी कर भाग गए थे उन्होंने गुरु जी के आदेश का तो पालन नहीं किया, किंतु अहदीआ के जूते खाकर उसकी प्रत्येक बात को स्वीकारा।

मिर्जा जाफर बेग नामक अहदीआ के गुरु जी के शरण में चले जाने के बाद औरंगजेब ने अपनी ओर से चार अहदीओं को और भेजा। उन्होंने भी गद्दारों को ही दंड दिया, गुरु जी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। गुरु जी इस अध्याय के अंतिम पद्य में कहते हैं-

जिस नो साजन राखसी दुशमन कवन विचार।।
छ्वै न सकै तिह छाह को, नि:फल जाइ गवार।।24।।
जो साधू सरणी परे, जिन के कवन विचार।
दन्त जीभ जिम राखिहै, दुष्ट अरिष्ट संहार।।25।।

13/24, 25

ठाकुर देशराज के 'सिख-इतिहास' में, गुरूमुखी लिपि में प्रकाशित करतार सिंह के 'सिख-इतिहास' में गुरु जी के 'विचित्र-नाटक' के अनुरूप ही वर्णन किया गया है। वास्तव में 'विचित्र-नाटक' में वर्णित ऐतिहासिक तत्वों के लिए किसी इतिहास से प्रामाणिकता की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि कवि ने स्वयं अपने किए हुए युद्धों के बारे में वर्णन किया है। अत: वह प्रामाणिक ही है। अन्य इतिहासकारों ने भी इसी वर्णन को आधार बनाकर ही सिख-इतिहास में इनकी चर्चा की है। इस प्रकार 'विचित्र-नाटक' काव्य-ग्रंथ होने के साथ-साथ इतिहास-ग्रंथ भी बन गया है। अनेक इतिहासवेत्ता इससे समय-समय पर सामग्री ग्रहण करते आए हैं।❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. सिख इतिहास - ठाकुर देशराज प्रकाशक- ग्रामोत्थान विद्यापीठ संगरिया (राजस्थान)
2. सिख इतिहास - करतार सिंह प्रकाशक- शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी, अमृतसर
3. गुरु गोविन्द सिंह - हरबंस सिंह प्रकाशक- राधकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. गुरु गोविन्द सिंह और उनका काव्य - डॉ. प्रसिन्नी सहगल
   प्रकाशक- हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ।

एसोसिएट प्रोफेसर
श्री गुरु गोविंद सिंह कॉलेज ऑफ कॉमर्स,
दिल्ली विवविद्यालय
मो. 9871880038, ई-मेल : jyotikaur@rediffmail.com

आलेख

जलछबि : स्त्री जीवन का एक यथार्थ दस्तावेज

✍ सिराजुल हक

असमीया साहित्य की लेखिका अनुराधा शर्मा पुजारी का 'जलछबि' एक महत्वपूर्ण उपन्यास है, जो वास्तव जीवन तथा यथार्थ पर आधारित है। इस उपन्यास के केंद्र में एक स्त्री का जीवन संग्राम, वार्धक्य तथा वृद्धावस्था और उसकी मानसिक स्मृति-विस्मृति का वर्णन मिलता है। इतना ही नहीं, लेखिका ने स्त्री के बचपन, संघर्ष, संग्राम, शादी, कार्य-कलाप, आधुनिकता आदि विविध पहलुओं के बारे में अपने उपन्यास में एक डायरी की बातचीत से स्पष्ट किया है।

लेखिका अनुराधा शर्मा पुजारी 'जलछबि' की पृष्ठभूमि में कहती हैं- ''जीवन, मृत्युर बाबेइ इमान विशाल आयोजन!'' जन्म-मृत्यु की इस विराट आयोजित दुनिया में जीवन का एक चरम पर्याय है, जिसे वृद्धावस्था व वार्धक्य कहते हैं। इसी अवस्था में इंसान को चातक पक्षी की तरह प्यास बुझाना मुश्किल है, फिर भी कोई इस दुनिया तथा संसार को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होता है। अर्थात आधुनिक युग पर सवाल उठाते हुए भयानक मृत्यु से जीतने की आशा-आकांक्षा पर कायम रहता है, जो इस उपन्यास में देखने को मिलता है। लेखिका अनुराधा शर्मा पुजारी अपने उपन्यास का आरंभ और अंत 'तेउ ढुकाल' (वह मर गई) छोटे-से वाक्य से करती हैं, जो छाया हुआ है। इसमें एक स्त्री की मृत्यु की बात कही गई है, जिसका नाम सुवर्णज्योति है। इसी पर पूरे उपन्यास की कहानी टिकी हुई है, जिसे जलछबि नामकरण किया है।

सुवर्णज्योति का जन्म एक ब्राह्मण परिवार के अमीर घराने में हुआ। वह बचपन चचेरी बहन स्वर्ण के साथ बिताती थी। स्वर्ण खूब साहसी लड़की थी, वह ककिला नदी टुलोंगा (हिलना-डुलना) नाव से पार होकर अपने आत्मीय स्वजन के मृत्यु स्थान पर पूजा करने जाती थी। उसके साथ सुवर्ण को पूजा-पार्वन के लिए जाना, वन-जंगल से फल तोड़ना आदि एक अलग ज्ञान रहा। सुवर्ण पढ़ने में काफी तेज रही। किंतु तेज होने से क्या कर सकती है? क्योंकि ब्राह्मण समाज व्यवस्था उसका पीछा करती रही, जिसकी वजह से सुवर्ण की कम उम्र (7-8 साल) में शादी कराने के लिए उसके पिता माथापच्ची कर रहे थे। उस समय देश में सत्याग्रह आंदोलन चल रहा था, जिसमें सुवर्ण भाग लेती है और स्वतंत्रता संग्राम में जाकर इंक्लाब जिंदाबाद, वंदेमातरम नारे लगाती है। लेखिका समाज व्यवस्था तथा परिवार पर उसका गुस्सा जाहिर करते हुए लिखती हैं कि- ''देशर इमान डांगर समस्यार माजत ताइर बियाखनहे घरर प्रधान समस्या होइ परिछे एतिया। सुवर्णर खंग उठि आहिल। ताइ बिया नहय। काइलइ सत्याग्रहलै घरत नोकोवाकैये आहिब। गुलि चालना हले भालेइ हब। देशर बाबे छहिद हब, ...परिब जदि नोवारेइ, बियाउ नहय ताइ। किय जे बामुण मानुहर घरत जन्म हल ताइर!''[1] अर्थात इसमें यह कहा है कि स्वतंत्रता संग्राम ही देश की बड़ी समस्या थी, लेकिन सुवर्ण के घर में

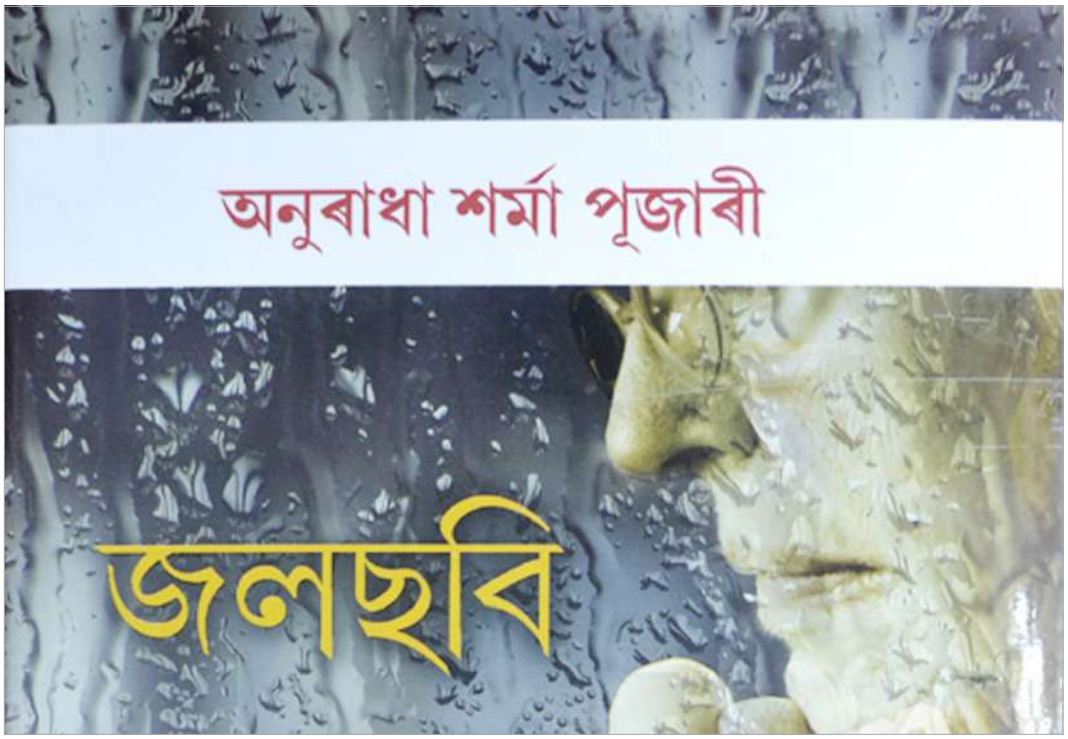

उससे बड़ी समस्या के रूप में सुवर्ण का विवाह हो जाना था। इसलिए सुवर्ण को गुस्सा आया....कल सत्याग्रह में बिना बताए जाना है, यदि उसमें गोली भी चली तो अच्छा ही है। देश के लिए शहीद हो जाएंगी....यदि पढ़ने का मौका नहीं मिलता है तो शादी भी नहीं करेगी। उसका जन्म क्यों ब्राह्मण घर में हुआ! यहाँ पर लेखिका ने सुवर्ण की शादी से अधिक देशप्रेम को महत्व प्रदान किया है और ब्राह्मण समाज व्यवस्था पर सवाल उठाया है। फिर सवाल उठाने से क्या होता है, मनुष्य सामाजिक प्राणी है, जिसका शिकार सुवर्ण को होना पड़ा। सुवर्ण की शांति (पीरियड उत्सव तथा मासिक धर्म) शुरू होने के पहले परिवार वाले असम के चाय बगान के मैनेजर रमेश के साथ शादी कर देते हैं। फिर शांति होने के बाद सुवर्ण का शांति विवाह हो गया और ससुराल चली गई। इतनी कम उम्र में वहाँ जाकर दूसरे परिवार का दायित्व संभालना मुश्किल की बात है। फिर भी सुवर्ण ने ईमानदारी, समझदारी से अपना दायित्व निभाया। उसका पति रमेश कहता है- ''हुनाचोन, आनुष्ठानिक शिक्षा नापाला बुलि बेजार नकरिबा। शिक्षित हबलइ स्कुल-कलेजत प्रथम, द्वितीय स्थान नापालेउ हय। मइ तोमार पढ़ार दायित्व ललो।''[12] रमेश ने अपनी पत्नी सुवर्ण को समझाया कि (सुनो! अनुष्ठानिक शिक्षा नहीं मिली तो बुरा मत मानना। शिक्षित होने के लिए स्कूल-कॉलेज में प्रथम, द्वितीय होने की जरूरत नहीं है। मैं तुम्हें पढ़ाने का दायित्व लेता हूँ।) इसके साथ सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेने का हौसला भी बढ़ाया। सुवर्ण को मौका मिला और उसका भरपूर फायदा लेते हुए सत्याग्रह में जाने लगी। वह सत्याग्रह के लिए अपने देवर को मैगजीन और महिलाओं को संगठित करने के लिए हमेशा मदद और हौसला देती रही। यह उसकी जेठानी तथा अन्य कुछ लोगों को पसंद नहीं आया। किंतु उसकी सास पूर्ण समर्थन करते हुए कहती- ''आमि आखर लिखिब नाजानो, किंतु भात-आंजा भालकइ रान्दो, सुवर्ण शिक्षिता छोवाली बाबेहे गांव खनर डेकाचामे बिचारिछे। भाल कामत सदाय मताकेइटाइ आगबाढ़बिने----आमार न बोवारीरो योग्यता आछे।''[13] अर्थात (हम अक्षर नहीं लिख सकते हैं, किंतु चावल-सब्जी अच्छी तरह पका सकते हैं, सुवर्ण की शिक्षित लड़की होने

की वजह से गाँव के युवा चाह रहे हैं। क्या हमेशा मर्द ही अच्छे काम में आगे बढ़ेंगे-हमारी नई बहू की भी योग्यता है।) इसमें केवल सुवर्ण की तारीफ ही नहीं की गई है, वरन देश की सेवा के लिए बहू का हौसला भी बढ़ाया है।

सुवर्णज्योति की शादी होने के कुछ साल बाद उसके ससुर तथा आत्मीय लोग सुवर्ण पर बच्चा न होने पर ताना मारने लगे। किंतु उसकी सास हमेशा सपोर्ट करती थी। सुवर्ण कहती है- ''मोर शाहुआई माने बौटि, कोनोबा जनमर मोर आई आछिल। तेउ मोक सकलोबोरर परा रक्षा करि थाके। दुदिनलइ आपुनि चाकरिर परा आहे, मइ एइ बेया कथाबोर केनेकइ कउ! मनर कथा मनते मार जाय। केचुवा नोहोवा बाबे मोक बाजी बुलि कय सकलोवे.....''[4] अर्थात इसमें यह कहा गया है कि सुवर्ण को संतान न होने की वजह से बांझ के साथ तरह-तरह के ताने मारते थे और इज्जती करते थे। किंतु इससे उसकी सास ने हमेशा रक्षा की। ये बातें रमेश (पति) को इसलिए नहीं कही कि वह घर में दो दिन के लिए नौकरी से छुट्टी लेकर आता है, जिसकी वजह से मन की बात मन में रखी और कहने के लायक नहीं समझा। इसमें एक आदर्श स्त्री की धैर्यता, सहनशीलता का स्पष्ट परिचय मिलता है। फिर भी रमेश को किसी तरह सारी बातें पता चली और अपनी स्त्री सुवर्ण को लेकर चाय बागान में चला गया। वहाँ दोनों का दांपत्य जीवन शुरू हुआ। दो बच्चे भी हो गए। बच्चों की शिक्षा के लिए स्कूल ढूँढ़ने लगे। फिर दोनों की सहमति से गाँव में (जहाँ रमेश के पिता-माता रहते हैं) पढ़ने के लिए भेज दिया। भरा हुए परिवार में फिर सन्नाटा छा गया। कुछ दिन बाद एक बच्ची का जन्म हुआ, जिसका नाम मानि या मालिनी देवी है। इस प्रकार फिर से सुवर्ण की गोद भरी। इधर उसके (रमेश) मित्र श्याम महंत की एक चिट्ठई आई, जो इस प्रकार है-''बन्धु, मोक रक्षा कर।.....तत्क्षणात मोर बंग्लालइ आह। बंग्लात मजदूरे घेरी जुइ दिब खुजिछे। सकलोरे हाते हाते दा-कुठार। मोर छोवाली दुजनी, माकर हइते....तोर बंग्लालइ पठियाइछो,.....काक विश्वास करिम ?[5] अर्थात (दोस्त, मेरी रक्षा कर।....चिट्ठी मिलने के बाद तुरंत मेरे आवास में आ जाना। आवास को मजदूरों ने चारों ओर से घेर कर आग लगाना चाह रहे हैं। सबके हाथ में दाव-कुल्हाड़ी है। मेरी दोनों लड़कियों को उसकी माँ के साथ....तेरे आवास पर भेज दिया।... किसका भरोसा करें ?) यह चिट्ठी मिलने के बाद रमेश तुरंत मानवीयता की खातिर में अपनी गाड़ी लेकर पहुँच गया। रमेश को देखते ही मजदूर चिल्लाने लगे कि- ''साहाब, तइ गुचि जा। इयाक आमि खतम करिम।[6] अर्थात कि साहब, तुम भाग जाओ। हम इसे खत्म करेंगे। परंतु मजदूरों का गुस्सा रोक नहीं पाया। रमेश अपने मित्र को बचाने के लिए उसे आवास के अंदर से बाहर ला रहा था, तभी किसी मजदूर ने रमेश पर पीछे से कुदाल तथा फावड़ा से प्रहार किया। श्याम महंत से रमेश शर्मा ज्यादा चोटिल हुआ, फिर श्याम महंत उसे संभालते हुए किसी तरह पकड़ कर गाड़ी लेकर भागा और बाल-बाल बचे। जिसकी चिंता थी वही हुआ। चोटिल रमेश सुध-बुध खो चुका था। दस दिन बाद होश आया, उसे उन्नत चिकित्सा के लिए हवाई जहाज से कोलकाता भेजा गया।

सुवर्णज्योति का संग्राम शुरू हुआ। सुवर्ण अपने आठ महीने की बेटी और दो बेटे को सास के पास रखकर पति के साथ जोरहाट के हवाई अड्डा से कोलकाता की उड़ान भरी। वह बहुत चिंतित थी, डॉक्टरों ने सुवर्ण को सांत्वना देते हुए कहा- ''आमि चेष्टाहे करिब पारो, समय आरु ईश्वर एइ दुयो जदि सदय हय आपोनार स्वामी भाल हब। तेउ आपोनार नाम कले चकुरे विचारे, एयाइ एतिया शुभ लक्षण।''[7] अर्थात, हम केवल कोशिश कर सकते हैं, यदि समय और ईश्वर दोनों कृपा करें तो आपके पति ठीक हो जाएँगे। वह आपका नाम लेने पर आँखों से ढूँढ़ता है, यहीं अब शुभ लक्षण है। इस बार सुवर्ण ने अपने पति को लेकर समुद्री यात्रा शुरू की। सुवर्ण अपने पति की बेहतर चिकित्सा के लिए भारत से जापान की ओर जाने वाले मालवाहक समुद्री जहाज से चटगांव, रंगून, थाईलैंड होकर हांगकांग की ओर रवाना हुई। डॉक्टर के मुताबिक रमेश की सेहत के लिए समुद्री यात्रा लाभदायक होगी, इसलिए मालवाहक जहाज से लंबी यात्रा की। उस समय सुवर्ण की आठ महीने की

बेटी मानि का दस महीना पूर्ण हो रहा था। इसलिए सुवर्ण को बेटी और दो बच्चों की याद आ रही थी। जहाज चलती रहा। पैगोंग पहुँचने के पहले समुद्र में आंधी आग हुई। डर की बात थी। आपदाओं से बचने के लिए रमेश शर्मा को लाइव जैकेट पहनाया। और कप्तान स्टंटन ने कहा- डरो मत, इन आपदाओं से निपटने के लिए तैयार कर रहा हूँ। इस प्रकार विविध समस्याओं का सामना करते हुए सुवर्ण अपने पति का हर कामों में साथ दे रही थी। एक दिन रमेश जहाज में होश खो चुका था, जिसे लेकर सुवर्ण काफी चिंतित हुई। कप्तान ने सुवर्ण से कहा- ''तुमि धैर्य नेहेरुवाबा मिछेज शर्मा, तेउर एको नहय, इयार सर्वश्रेष्ठ हस्पिटलखनलै आमि मिस्टर रमेशक लोइ गोइ आछो। एनेकुवाकै हठाते ज्ञान आगेये हरुवाइछिल नेकि ?''[8] इस प्रकार कप्तान ने सुवर्ण को धैर्य रखने की बात कही और सांत्वना दी। इतना ही नहीं, रमेश को कप्तान ने यथासंभव हॉस्पिटल में दाखिल कराने की कोई कसर नहीं छोड़ी। उसके बाद रमेश टूटी-फूटी आवाज में बात करने लगा। हांककांग के हॉस्पिटल में एक महीने आठ दिन चिकित्सा मिलने के बाद हवाई जहाज से कोलकाता भेज दिया और फिर वहाँ 15 दिन चिकित्सा होने के बाद रमेश ठीक हुआ, किंतु संपूर्ण नहीं। कोमा में जाने वाले रमेश के प्रति सेवा भाव देखकर डॉक्टरों ने सुवर्ण की तारीफ कर रहे थे। सुवर्ण कहती है- ''एइ पृथिवीत असंभव बुलि एको कथा नाइ, अंतरत यदि विश्वासर दृढ़ता थाके, मानुहर प्रार्थना पृथिवीर सकलो उत्कृष्ट औषधतकइ फलदायक हइ परे।''[9] अर्थात (इस धरती पर असंभव की कोई बात नहीं है, यदि मन में विश्वास की दृढ़ता है, दुनिया में इंसान की दुआ सबसे उत्कृष्ट दवाई से भी फलदायक है। सुवर्णज्योति लगभग छह महीने के बाद हवाई जहाज से जोरहाट के रोरैया हवाई अड्डे पर उतरी और अपने घर में परिवार से मिली।

सुवर्ण और उसके पति के घर में आने के बाद दोबारा पारिवारिक समस्या खड़ी हो गई थी, क्योंकि रमेश को कंपनी की ओर से एक घर और चार लाख रुपए देकर अवसर प्रदान किया गया। इन पैसों पर रमेश के भाइयों की नजर पड़ी। व्यवसाय के नाम पर रमेश का सारा बैंक बैलेंस हड़पना शुरू किया। इतना ही नहीं, उसे डॉक्टर सुबोध सरकार के द्वारा मारने की योजना बनाई। जो इस प्रकार है- ''आई सुवर्णज्योति, तइ एइ औषधबोर रमेशर पुरणि चिकित्सकक देखुवागइ। मइ कथाटो धरिब परा नाइ, मोर मते एइ औषधबोर श्लो पइजनर बादे एको नहय। कथाबोर बर भयंकर जेन लागिछे।''[10] अर्थात आई सुवर्णज्योति, तुम यह दवाइयों को रमेश के पुराने डॉक्टर को दिखाना। मुझे बात समझ में नहीं आ रही है, मेरे मुताबिक यह दवाइयाँ स्लो पोइजन हैं, इसके अलावा और कुछ नहीं है। बातें बहुत भयंकर लग रही हैं। उसे लेकर अदालत का दरवाजा खटखटाना शुरू किया। अंत में सुवर्ण की जीत हुई। और उसके बाद सुवर्ण ने परिवार और व्यवसाय दोनों संभालना शुरू किया। इसी बीच 80 साल की अवस्था में रमेश ने अपना जीवन त्याग दिया। उसके बाद सुवर्ण के बड़े बेटे की भी मृत्यु हुई। इधर सुवर्णज्योति की वृद्धावस्था शुरू हुई और अनाप-शनाप बोलने लगी। तब हॉस्पिटल में दाखिल किया गया और सुवर्ण कहने लगी- ''आपोनालोके षड़यंत्र करि मोक हस्पीटलत राखिब नोवारिब। मइ जानो, एइ षडयंत्रत, आपोनालोकर हइते मोर जीयरी, बोवारी, लरा सकलो योग दिछे। एइ भरिटो भागि एटा सुन्दर सुयोग आहिल। घरलइ जामगइ....बहुत काम आछे, एटा भविष्यत आछे मोर, किय मोर लरा-छोवालीये भाबे मोक भविष्यहीन बुलि! डेका मानुहबोरे किय भाबे वयस बेछि हलेइ भविष्यतर रास्ता शेष बुलि ? मोर मात्र आशी बछर,.....एइदरे चिकित्सात गाफिलति करि मोर भविष्यत किय ध्वंस करिछे?''[11] अर्थात आपलोग षड्यंत्र कर मुझे हॉस्पिटल में नहीं रख सकते हैं। मैं जानती हूँ, आपलोगों के साथ मेरी बेटी, बहू और बेटे भी इस षड्यंत्र में शामिल हैं। एक पैर टूटने की वजह से एक अच्छा मौका मिला। मैं चलते हुए घर जाऊँगी....बहुत काम है, एक भविष्य (स्वप्न) है, मुझे मेरे बेटे-बेटियों ने क्यों भविष्यहीन समझा है! युवा लोग क्यों सोचते हैं कि उम्र ज्यादा होने की वजह से भविष्य खत्म होता है ? मुझे केवल अस्सी साल हुए हैं.....इसी तरह चिकित्सा में लापरवाही कर मेरा भविष्य क्यों ध्वंस कर रहे हैं ?) सुवर्ण की बेटी मानि यानी मालिनी देवी नौकरी करती

थी और उसके पति भी। घर में रहने के लिए तथा सुवर्णज्योति की देखभाल करने के लिए कोई नहीं था। इसलिए रमा और बंदिया को सुवर्ण की देखभाल तथा उसके हर काम के लिए रखा गया। वे खाने-पाने से लेकर सोने तक तथा सुबह से रात तक की हर फरमाइश सुनते रहे। फिर भी सुवर्ण के साथ नहीं बनती थी, उल्टे ताने सुनने पड़ी। जो इस प्रकार है- ''तई गुचि गलि, आजि दिनटो इहत दुयोजनीये मोक मता नाइ, आबेलि चाहकाप खुजि खुजि खाइछो। मोर कापोरबोर धुइ करबात लुकुवाइ थय, जाते मइ बिचारि नापाउ---मोक इमान शास्ति दिबलइ किय आनिलि.....इत्यादि।''[12] अर्थात तेरे चले जाने के बाद आज दिनभर इन दोनों ने मुझसे बात नहीं की, शाम के समय एक कप चाय माँगकर पी ली। मेरे वस्त्र धोने के बाद कहीं पर छुपा कर रखते हैं जो मुझे ढूँढ़ने से भी नहीं मिले---मुझे इतनी यातना देने के लिए क्यों लाई.....इत्यादि। इतना ही नहीं, बेटी मालिनी भी आँखों का काटा बन गई थी और उसकी भी शिकायत दामाद से करने लगी।

अंत मैं मालिनी तंग आने लगी। धीरे- धीरे सुवर्ण की सेहत बिगड़ने लगी। और एक दिन हॉस्पिटल से नर्स का कॉल आया कि तेउ ढुकाल (वह मर गई)। उपन्यास की कहानी खत्म हुई।

लेखिका अनुराधा शर्मा पुजारी ने अपने उपन्यास जलछबि में नायिका सुवर्णज्योति के माध्यम से पूरी स्त्री जाति का जीवन संघर्ष के साथ वृद्धावस्था की मानसिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं को सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया है, जो वर्तमान समय की वास्तविकता है और स्त्री समाज का एक अत्यंत प्रासंगिक दस्तावेज भी। ❑

संदर्भ सूची :

1. अनुराधा शर्मा पूजारी-जलछबि, पृ-83, बनलता, पंचम संस्करण-2016
2. अनुराधा शर्मा पूजारी-जलछबि, पृ-93
3. अनुराधा शर्मा पूजारी-जलछबि, पृ-95
4. अनुराधा शर्मा पूजारी-जलछबि, पृ-96
5. अनुराधा शर्मा पूजारी-जलछबि, पृ-117
6. अनुराधा शर्मा पूजारी-जलछबि, पृ-117
7. अनुराधा शर्मा पूजारी-जलछबि, पृ-123
8. अनुराधा शर्मा पूजारी-जलछबि, पृ-140
9. अनुराधा शर्मा पूजारी-जलछबि, पृ-152
10. अनुराधा शर्मा पूजारी-जलछबि, पृ-162
11. अनुराधा शर्मा पूजारी-जलछबि, पृ-15
12. अनुराधा शर्मा पूजारी-जलछबि, पृ-60

(शोधार्थी), हिंदी विभाग
पांडिच्चेरी विश्वविद्यालय,
तार.नं-605014,
ईमेल-shirazulhoquexzy@gmail.com

यह मुलक हमारा भी है क्या : तस्वीरन

✍ सत्येन्द्र पाण्डेय

कवि विजेंद्र एक ऐसे लोकधर्मी कवि हैं, जिनकी लेखनी अपनी जनता के विविध अंतरंग और संश्लिष्ट भूमि को महसूस करती हुई उसके पक्ष में खड़ी ही नजर नहीं आती, बल्कि उसके लिए व्यवस्था से भी लोहा लेती है। विजेंद्र हमेशा 'संगठन' की शक्ति पर विश्वास करते हैं- 'जो संगठित हैं, वे आज का अटूट अस्त्र हैं।' उनकी कविताओं में सामाजिक रूपांतरण की पूरी वैज्ञानिक प्रक्रिया दिखाई देती है, जो युवा पीढ़ी का मार्गदर्शन करती है। भले ही तथाकथित बड़े आलोचकों को इससे फर्क नहीं पड़ता हो; क्योंकि उनकी आत्मा तो पहले ही बिक चुकी है। ऐसे लोगों पर विजेंद्र की यह उक्ति सटीक बैठती है कि-''पूँजी केंद्रित समाज में उपभोग वृत्ति और धन की लालसा बढ़ जाने से हम अपने काव्य मन को उन बाहरी शक्तियों के हवाले कर देते हैं, जो हमारी सृजन शक्ति को नष्ट करती है। यह एक तरह से शैतान से हमारी आत्मा का सौदा है।''[1] विजेंद्र ने सत्ता से दूर रहकर लोक के पक्ष को मजबूत किया है। निराला, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और त्रिलोचन की तरह ही विजेंद्र के हृदय में भी लोक का संघर्ष ,उसकी पीड़ा और उसकी अग्रगामी क्रियाशीलता दृष्टिगत होती है।

विजेंद्र की कविता में उनका समय, समाज और प्रकृति का गाढ़ा रंग दिखाई देता है। उनकी कविताएँ जीवन और प्रकृति की क्रियाशीलता को अंकित करते हुए चलती हैं। वह अपने समय की गति को को पकड़ने वाले ऐसे कवि हैं, जिनकी कविताओं के केंद्र में भूमिहीन किसान, खेतों में काम करने वाले मजदूर, बुनकर, कारीगर और करोड़ों ऐसे लोग हैं, जो अभाव में जीने के लिए अभिशप्त हैं। वह इन्हीं के अधिकारों के लिए जीवन पर्यंत लड़ते रहे।

विजेंद्र की लोक चेतना के निर्माण में मार्क्सवादी विचारधारा का महत्वपूर्ण योगदान है। उनके काव्य में भी इस वैज्ञानिक विचारधारा का संकेत मिलता है, जो बुनियादी परिवर्तन का पक्षपाति है तथा पूँजी केंद्रित व्यवस्था को तोड़ना चाहता है। कवि की स्पष्ट धारणा है कि- ''द्वंद्वात्मक भौतिकवाद ही सर्वहारा वर्ग की सेवा कर सकता है। उसे अपने अनुकूल दुनिया को बदलने की वैज्ञानिक समझ दे सकता है। यह अत्यंत वैज्ञानिक और व्यावहारिक दर्शन है। यह इस बात पर जोर देता है कि सिद्धांत व्यवहार पर निर्भर है।''[2] अत: विजेंद्र केवल कविता ही नहीं करते, बल्कि उसका लोकधर्मी सौंदर्यशास्त्र भी रचते हैं। उनकी विश्वदृष्टि का प्रभाव उनके 'विजन' पर पड़ता है। और वह जब कविता के लिए वस्तु का चयन करते हैं तो वह भी

उनके विश्वदृष्टि से निर्देशित और संचालित होती है।

लोकधर्मी चरित्र का सृजन भी विजेंद्र की कविताओं की खासियत है। इन चरित्रों के माध्यम से वह लोक के यथार्थ स्थिति का जीवंत चित्र प्रस्तुत करते हैं। इंद्रियबोध और भाव के संयोग से कविता धारदार हो गई है। इस कड़ी में 'तस्वीरन अब बड़ी हो चली' जैसी चरित्र प्रधान कविता को देखा जा सकता है। यहाँ लोक का क्रियाशील रूप मूर्त हो गया है। फूलों की दुनिया से संबद्ध तस्वीरन का जीवन संघर्षों के कँटीले सफर की कथा है। उसका पूरा परिवार उसी के श्रम पर निर्भर है। वह एक-एक फूल तोड़ कर उन्हें पिरोती है तब जाकर हार, लड़ियाँ और गजरे तैयार होते हैं। फूलों की दुनिया जैसे उसकी दुनिया है। वह जब फूलों को टहनियों से तोड़ती है तो इतना ख्याल रखती है कि कहीं उसकी छुअन से बिरछा जग न जाए। वह कहती है, ''धरती का मन/ रुई के कच्चे धागे/ छिन पोए/ छिन सूत बिराए/''[3] फूलों के प्रति तस्वीरन की आत्मीयता सहज ही देखी जा सकती है। अभाव और भूख की पीड़ा से आहत होकर वह कहती है, ''कितने थोड़े ये/ और क्यों नहीं खिले निगोड़े/ इतने से क्या हार बनेगा/ नहीं बना तो कैसे कुनबे का पेट पलेगा/''[4] वह रोज सोचती है कि अगर झोली भर फूल मिल जाते तो वह जयमाल बनाती, लेकिन ऐसा नहीं होता। इक्का-दुक्का फूलों को देख कर उसके सपने टूट जाते हैं। उसका जीवन जैसे ढाक के तीन पात बन कर रह गया हो। पर प्रकृति के प्रति उसके प्रेम में कोई कमी नहीं आती। वह धूप-ताप और जाड़े में इसे भर आँख निहारती ही नहीं, बल्कि उसे सिंचती भी है।

प्रकृति के प्रति एक रागात्मक संबंध विजेंद्र की कविताओं में दिखाई देती है। हवा का चलना, पत्ते का गिरना, फूल का खिलना या यूँ कहें कि प्रकृति की धड़कन कवि की लेखनी को आकार देती है तो गलत न होगा। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में, ''मनुष्य शेष प्रकृति के साथ अपने रागात्मक संबंध का विच्छेद करने से अपने आनंद की व्यापकता को नष्ट करता है। बुद्धि की व्याप्ति के लिए मनुष्य को जिस प्रकार विस्तृत और अनेक रूपात्मक क्षेत्र मिला है उसी प्रकार भावों (मन के वेगों) की व्याप्ति के लिए भी।''[5] विजेंद्र की कविता शेष प्रकृति से प्राणवायु ग्रहण करती है। वह प्रकृति से बातें करती है। उसके सुख-दुख में शामिल होती है। नन्हीं फुलसुंघनी चिड़िया तस्वीरन के एकाकीपन को दूर करती है- ''आती है रोज/ अपने पंख चमकाती/ नन्ही फुलसुंघनी / नहीं दिखाई देता पत्तों में / बिना हवा के जब हिल उठती हैं / तब लगता है / तू ही होगी / जा/ उड़ जा अंत कहीं / मेरा एकाकीपन तो छोड़/ बहुत हो गई हंसी ठिठोली/''[6] यहाँ मनुष्य के साथ प्रकृति के साहचर्य का बहुत सुंदर बिंब उभरा है। कवि ने जीवन की व्यापकता को प्रकृति के माध्यम से परिभाषित करने का प्रयास किया है, क्योंकि तस्वीरन जैसे चरित्रों का जीवन सपाट नहीं है। उनकी पीड़ा के कई स्तर हैं। अभाव में गोते लगाता तस्वीरन के जीवन को अन्योक्ति के माध्यम से ही परखा जा सकता है। आचार्य शुक्ल ने भी इस पद्धति को परिष्कृत माना है और विजेंद्र में भी इसका निरंतर विकास क्रम देखा जा सकता है। कुमारेंद्र

विजेंद्र ने अपनी कविता में ऐसे चरित्रों को प्रधानता दी है जो सामान्य, अति सामान्य हैं और अभाव में संघर्ष करते हुए श्रमरत हैं। यहाँ प्रकृति भी अपनी पूरी जीवंतता के साथ चरित्रों के सुख-दुख की भागीदार बनी है। भाषा ऐसी की, जिसमें जनपद की महक है। तस्वीरन हो या गंगोली- अपने संघर्षों के माध्यम से समाज के समक्ष तमाम प्रश्न उठाती हैं और हमें सोचने के लिए बाध्य करती हैं कि हम सत्य से कितने दूर हैं।

पारसनाथ सिंह की कविता में प्रकृति का रंग देखते ही बनता है- ''वर्षों बाद मैना वापस आई है/ और मेरे आंगन की खामोशी टूट गई है/ बच्चा तितली पकड़ने के लिए दौड़ रहा है/ बीवी आंजन पारते हुए गुनगुना रही है।'' युवा लोकधर्मी कवि विजय सिंह की कविताओं में तो प्रकृति जीवन में घुल-मिल गई है- ''पगडंडी को छूकर / एक नदी / बहती है मेरे भीतर/ हरे रंग को छूकर/ मैं वृक्ष होता हूं/ फिर जंगल/''[7]

प्रकृति और मनुष्य का संबंध एक समृद्ध संसार का सृजन करता है। हमारी आत्मा और जगह एक-दूसरे के पूरक हैं। एक के अभाव में दूसरा अपूर्ण है। मनुष्य का शरीर भी पाँच तत्वों से बना है। अत: हमारे उद्भव और विकास में प्रकृति की महत्ती भूमिका है। लेकिन जैसे-जैसे हमारे भौतिक संसाधन विकसित होते गए उसी अनुपात में हमारे विचार, नैतिक मूल्य, मानवीय संवेदना विकृत होते गए हैं। पूँजीवादी व्यवस्था ने हमें लोक से विलग करने का षड्यंत्र रचा है। हम अपने सामाजिक सरोकार भूलते जा रहे हैं। शहरीकरण और प्रचंड विकास के लालच ने हमें अपनी हरी-भरी प्रकृति से वंचित कर दिया है। तस्वीरन कहती है- ''तिनके लेकर/खड़ा ताकता चिड़ा काजरा आंजे/ आंखें तिरछी कर / क्या देख रहा मुझको / कहां बसाएं घर / इससे पहले तो/ यहां / घना बांस था / मन चाहा जहां रमे/ फुदके/ पंख फुलाए/ लोट-लोट कर/ धूल राख में/ अंग निखारे मांजे/ अब कौन कहां रहने देता/ इस बसवट में / एक चहक में/ भागे आते/ बच्चे कच्चे/ दोनों हाथों से हमें उड़ाते /''[8] तस्वीरन की चिंता सर्वहारा की चिंता है, जो पूरी दुनिया को अपने श्रम से सुंदर बनाती है। भौतिक संसाधनों का विकास उसके श्रम की धूरी पर निर्भर है। लेकिन सबसे अधिक पीड़ित और शोषित वही है। जो फूलों को पिरो कर हार और गजरा बनाता है, उसी के लिए जुड़ा में फूल लगाना और गजरा पहनना एक सपने जैसा लगता है। तस्वीरन के शब्दों में-''चुनती हूं / मैं/ फूल धूप में / जाने किसके जुड़े सजते हैं / कुछ हैं / जो पैसे के बल / देवों पर चढ़ते हैं /''[9]

आज के इस चुनौतीपूर्ण समय में तस्वीरन जैसे लोगों का संघर्ष और गहरा हो गया है। लोकविमुख शक्तियाँ अपने लाभ के लिए तरह-तरह के दाँव-पेच चल रही हैं। भ्रम का माहौल पैदा कर रही हैं। अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बाजार अपने आकाओं के हित में जन विरोधी कुचक्र चला रहे हैं। भयावह माहौल पैदा हो गया है। ऐसी व्यवस्था का कोई अगर विकल्प हो सकता है तो वह है समाजवाद। इसे विजेंद्र भी स्वीकार करते हैं। वह कहते हैं-''पूरी मनुष्य जाति आज मानव और प्रकृति विनाशी युद्ध की समाप्ति चाहती है। हर सभ्य जाति की चिंता है-समतामूलक समाज की स्थापना, सूचना प्रौद्योगिकी की प्रगति, परस्पर, स्थायी शांति और सम्मानपूर्ण सह-अस्तित्व!''[10] वास्तविकता तो यह है कि जब तक समाज वर्ग, धर्म,धन और संप्रदायों में विभाजित रहेगा, तब तक समाजवादी व्यवस्था बहाल नहीं हो सकती।

अस्पृश्य समझी जाने वाली तस्वीरन के जीवन में अहमद भाई और अब्बा भी शामिल हैं, जो उसके कार्य

में हाथ बँटाते हैं। अहमद साँझ होते ही कलियों की लड़ियों वाले गजरे से डंडी भर लेता है। वहीं अब्बा बाग रखाते बूढ़े हो गए हैं। एक माँ भी है, जिसे फालिज मार दिया है। उसके ऊपर का होंठ कँपकँपाता है। भाई-बहने भी हैं, जो अभी बहुत नादान हैं। रोज अढ़ाई किलो आटा खर्च हो जाता है घर चलाने में। घर की आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब है। मेहनत करने के बाद भी पेट पालना कितना दूभर हो गया है। तस्वीरन का दर्द भी गंगोली से मिलता-जुलता ही है। रात-दिन श्रम करने वाले ऐसे लोगों का जीवन भी मध्यवर्गीय भौतिक सुख -सुविधा से कोसों दूर है। ऐसे में लोकतंत्र भ्रमतंत्र जैसा ही लगता है।

तस्वीरन का संघर्ष यहीं खत्म नहीं होता। वह समाज की दकियानूसी सोच का भी शिकार होती है। वह कहती है- ''अब्बा / देखें मुझे बराबर अपने कंधों / होते उदास / आस-पड़ोस ताने कसता है / अम्मा कहती मन-मन में / तस्वीरन अब बड़ी हो चली /''[11] गरीबी, भुखमरी के साथ ही पारंपरिक रूढ़िवादिता ने तस्वीरन के जीवन को कष्ट साध्य बना दिया है।

दरअसल, विजेंद्र की कविताओं में इंद्रियबोध और भाव की गहन बुनावट मूल्यों का सृजन करती है तथा सामान्य अति सामान्य जन में प्रतिकूल परिस्थितियों से संघर्ष करने का साहस और विश्वास पैदा करती है। विजेंद्र ने जिस यथार्थ को कविता में उकेरा है, उसका दायरा बहुत बड़ा है। इसे रामविलास शर्मा के विचारों से समझा जा सकता है। वह कहते हैं- ''यथार्थवाद को सीमित अर्थ में लेना अनुचित है। उसमें सामाजिक समस्याओं के चित्रण के अलावा प्रकृति चित्रण भी हो सकता है, संघर्ष के चित्रण के अलावा प्रेम के मुक्तक भी लिखे जा सकते हैं।... साहित्य का विकास दो परस्पर संबद्ध स्तरों पर होता है। एक है विश्व प्रतीति का स्तर, सामाजिक जीवन के हमारे ज्ञान का स्तर और दूसरा है, भावजगत, इंद्रियबोध, हमारे सौंदर्यबोध का स्तर। इनमें संतुलन कायम रखना आवश्यक होता है। इस संतुलन को भुलाकर न तो उच्च कोटि का साहित्य रचा जा सकता है, न यथार्थवाद का सही विवेचन किया जा सकता है।''[12]

विजेंद्र ने जिस परिवेश को देखा तथा महसूस किया, उसे उसी की चेतन तथा प्रकृति और विचार के माध्यम से पुन: सृजित किया है। और ऐसा करते हुए उनकी लोकधर्मी दृष्टि हमेशा सजग रही है। वह भारतीय लोकतंत्र में आज की संस्कृति को लेकर भी चिंतित हैं, और सांप्रदायिकता को सबसे बड़ा खतरा मानते हैं। क्योंकि जब यह अपने चरम पर पहुँचती है तो फासिज़्म को जन्म देती है। विजेंद्र इस संदर्भ में नेहरू के विचार को दोहराते हुए कहते हैं कि ''संप्रदायवाद राजनीतिक और सामाजिक प्रतिक्रियावादियों के हाथ का हथियार है, जिसके जरिए वे साम्राज्य विरोधी संघर्ष में रुकावटें डालते हैं और उच्चतर वर्गों की सुख-सुविधाओं को सुरक्षित बनाए रखते हैं।''[13] इसीलिए विजेंद्र के काव्य चरित्र सांप्रदायिक वैमनस्य का विरोध करते हैं। कस्तूरी हो, चाहे तस्वीरन स्वाधीनचेता श्रमशील पात्र हैं। मुसलमान परिवार में जन्मी तस्वीरन की पीड़ा और बढ़ जाती है, जब समाज उसे हिंदू -मुसलमान के नजरिए से देखता है। वह सोचती है कि यह मुल्क अजब है। यही हमारा जन्म हुआ, इसी मिट्टी और पानी में सने-पुते, खेले-कूदे फिर आसपास के लोग हमसे क्यों घिन करते हैं? वह यहाँ तक कहती है कि उसके खून को भी लोग जहरीला मानते हैं, जबकि उसने अपने श्रम से बहुत कुछ किया। अनगिनत बाग लगाए, दूल्हा-दुल्हन के लिए गजरे और हार बनाए। पर इसका प्रतिफल क्या मिला? वह कहती है- ''फिर भी हम पर शक करते हैं / अहमद भैया को कटुआ कहते /अब्बा से बेगार कराते /कहां जाएं/यह मुलक हमारा भी है / क्या /''[14] इतने पर भी वह अपने कर्म से विरत नहीं होती। वह श्रम की शक्ति को जानती है। ऐसे लोगों के हाथों से ही तो हमारी धरती सुंदर बनती है। यह विश्व के हर छोर पर कार्यरत हैं। इनके पसीने की खुशबू से धरती का पोर-पोर खिल उठता है, पर इन्हें ही सबसे अधिक संघर्ष करना पड़ता है। तस्वीरन कहती है- ''वाह वाह / बहुत खूब / यह फूलों की दुनिया / मेरी न्यारी / नरम मुलायम / महक अनोखी- / अंदर से कारी।''[15] यही कारण है कि विजेंद्र संस्कृति जनांदोलन की बात करते हैं। सांस्कृतिक राष्ट्रवाद और धार्मिक उन्माद के समानांतर एक ऐसे विकल्प की

बात करते हैं, जिससे देश में कौमी एकता आ सके। वह विकल्प जनवादी सांस्कृतिक ही हो सकती है। यही संघर्षशील जनता के संघर्षों का कारगर हथियार हो सकती है।

विजेंद्र की कविता आज के प्रश्नों पर खुलकर विचार करती है। वह कठिन चुनौतियों का सामना करती हुई जन विरोधी नीतियों पर प्रहार करती है। कविता में अपने कथन को प्रभावी ढंग से कहने के लिए कवि लोक से शब्दों का चयन करता है। हालाँकि ऐसा करते हुए वह अपनी परंपरा को नहीं भूलता। भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र, सौंदर्यशास्त्र और काव्य परंपरा से गुजरते हुए उसे आत्मसात करता है। साहित्यिक और सांस्कृतिक परंपरा का बोध कवि को अपने क्लैसिक से होती है। वह साहित्य में अपने जातीय क्लैसिक की पड़ताल भी करता है। विजेंद्र ने अपनी कविता में ऐसे चरित्रों को प्रधानता दी है जो सामान्य, अति सामान्य हैं और अभाव में संघर्ष करते हुए श्रमरत हैं। यहाँ प्रकृति भी अपनी पूरी जीवंतता के साथ चरित्रों के सुख-दुख की भागीदार बनी है। भाषा ऐसी की, जिसमें जनपद की महक है। तस्वीरन हो या गंगोली- अपने संघर्षों के माध्यम से समाज के समक्ष तमाम प्रश्न उठाती हैं और हमें सोचने के लिए बाध्य करती हैं कि हम सत्य से कितने दूर हैं। विजेंद्र की कविता सामान्य, सक्रिय और संगठित जनशक्ति का आवाहन करती हुई अपने समय की गति को पकड़ती है।❑

संदर्भ ग्रंथ :

1. विजेंद्र- सौंदर्यशास्त्र भारतीय चित्त और कविता, अभिषेक प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2006, पृष्ठ 90
2. विजेंद्र- मार्क्सवाद क्यों जरूरी है (फेसबुक से साभार)
3. विजेंद्र- कवि ने कहा, (तस्वीरन, कविता) किताबघर प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2008
4. वही, तस्वीरन (कविता)
5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल- चिंतामणि भाग 3 (काव्य में प्राकृतिक दृश्य)
6. विजेंद्र- तस्वीरन (कविता)
7. विजय सिंह- शांत जंगल को (कविता)
8. विजेंद्र-(तस्वीरन, कविता) कवि ने कहा, किताबघर प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2008
9. वही, तस्वीरन
10. विजेंद्र- सौंदर्यशास्त्र भारतीय चित्त और कविता, अभिषेक प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2006, पृष्ठ 17
11. विजेंद्र- तस्वीरन (कविता)
12. रामविलास शर्मा- आस्था और सौंदर्य, पहली आवृत्ति 2002, राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ-23-24
13. विजेंद्र- सौंदर्यशास्त्र भारतीय चित्त और कविता, अभिषेक प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2006, पृष्ठ 174
14. विजेंद्र- तस्वीरन (कविता)
15. वही

सी2एम1-534,, सी.एम.डी.ए. नगर,
बारसात रोड, नियर वायरलेस मोड़,
बैरकपुर-700121
मो.-9832558528

महात्मा गाँधी के पूर्वज : एक प्रामाणिक अध्ययन

✍ सूर्य प्रकाश

प्रस्तावना : भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को दिशा देने वाले प्रमुख स्वतंत्रता सेनानियों में महात्मा गाँधी का नाम सदैव अग्रणी रहा है। इनके बारे में अब तक सैकड़ों पुस्तकें एवं शोध पत्र प्रकाशित हो चुके हैं, लेकिन इनके पूर्वजों के बारे में अभी तक विस्तृत एवं समग्र लेखन नगण्य हुआ है। प्रस्तुत शोध पत्र में महात्मा गाँधी के पूर्वजों के बारे में शोधपरक एवं प्रामाणिक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

बीज शब्द : पोरबंदर, राजकोट, वांकानेर, दीवान, पूर्वज।

मूल आलेख : मोहनदास वैश्य या बनिया जाति के थे, जो मुख्यत: व्यापारियों की जाति होती थी।[1] इनके परिवार के पहले ज्ञात पूर्वज का नाम लालजी गाँधी था। ये मूलत: जूनागढ़ रियासत में भादर नदी के किनारे स्थित कुटियाना गाँव के निवासी थे, जहाँ लिंबाडा चौक के पास इनका घर था। इनके घर के पास ही 'खोखर दरबार' हवेली थी, जिसमें रहने वाले एक मुस्लिम खोखर परिवार के एस्टेट मैनेजर के रूप में नौकरी करते थे।[2] इसके बाद यह पोरबंदर में दफ्तरी या नायब दीवान के पद पर नियुक्त हुए। इन दिनों यह पद दीवान या प्रधानमंत्री का दाहिना हाथ माना जाता था। इसकी स्थिति वर्तमान में कैबिनेट में गृहमंत्री के समान होती थी। इनके पुत्र का नाम रामजी गाँधी था। रामजी गाँधी के पुत्र रहीदास गाँधी भी दफ्तरी के पद पर नियुक्त हुए। रहीदास गाँधी को जूनागढ़ के नवाब से थोड़ी भूमि उपहारस्वरूप प्राप्त हुई। रहीदास गाँधी के दो पुत्र थे - हरजीवन गाँधी और दमन गाँधी। ये दोनों ही पोरबंदर में दफ्तरी पद पर क्रमश: नियुक्त हुए। 1777 ई. में हरजीवन गाँधी (मोहनदास के परदादा) ने पोरबंदर में समुद्र तट से एक-चौथाई मील की दूरी पर एक घर एक विधवा ब्राह्मण महिला मानबाई से रु. 165 या 500 कौड़ी में खरीदा।[3]

हरजीवन गाँधी के बड़े पुत्र उत्तमचंद गाँधी को 'ओटा बापा' भी कहा जाता था। 'ओटा' शब्द इनके नाम के प्रथम अक्षर का संक्षिप्त रूप है और 'बापा' गुजरात में 'पिता' या 'किसी सम्मानित वरिष्ठ व्यक्ति' के लिए प्रयुक्त शब्द है। यह मोहनदास के दादाजी थे। इन्होंने 17 वर्ष की आयु में अपनी योग्यता के आधार पर पोरबंदर बंदरगाह पर सीमा शुल्क कलेक्टर की नौकरी प्राप्त की एवं खाली समय में यह अपने चाचा दमन गाँधी के कार्यालय में रहकर उनकी मदद करते थे, जिससे इन्हें रियासत के कामों का व्यापक अनुभव प्राप्त हुआ।[4]

एक दिन पोरबंदर के राणा हालोजी खिमोजीराज (1813ई.-1831ई.) ने दफ्तरी पद पर नियुक्त दमन गाँधी को बुलाने के लिए एक दूत भेजा, लेकिन वे अपने कार्यालय में नहीं थे। उनके कार्यालय में उपस्थित उत्तमचंद तुरंत उनकी ओर से राणा के दरबार में गए। राणा उनके आत्मविश्वास देखकर प्रभावित हुआ।[5] अगले ही दिन राणा ने उत्तमचंद को बुलाकर बताया कि माधवपुर का सीमा शुल्क कलेक्टर समय से राजस्व अदा नहीं कर रहा है। इस बर्ताव में उसे पोरबंदर के विरोधी राज्य जूनागढ़ का सहयोग प्राप्त हो रहा है।[6] इस समस्या के समाधान के लिए इन्होंने जूनागढ़ के प्रतिनिधियों से बातचीत की एवं उनसे एक समझौता किया। इन्होंने समझौते के तहत पोरबंदर राज्य के द्वीप जूनागढ़ को दे दिए, जबकि माधवपुर से पोरबंदर तक का तटीय किंतु

अनुर्वर क्षेत्र ले लिया। बाद में अपने दरबार में इस समझौते का लाभ पूछे जाने पर उन्होंने कहा कि वह भादर नदी पर बांध बनाकर इस अनुर्वर क्षेत्र को उपजाऊ बनाएंगे, जिससे उपज बढ़ेगी। कुछ वर्षों बाद इनकी भविष्यवाणी सत्य सिद्ध हुई। इनकी इस बुद्धिमत्ता के कारण इन्हें पोरबंदर राज्य का दीवान बना दिया गया। 7, 8 अपने परिवार में दीवान बनने वाले यह पहले व्यक्ति थे। इनका वेतन 2000 कौड़ी या 700 रुपये प्रति माह था। ऐसा कहा जाता है कि इनके अथक प्रयासों से राजस्व वृद्धि के कारण पोरबंदर को प्रथम श्रेणी के राज्य का दर्जा मिला।[9] जिस प्रकार पोरबंदर का अपने क्षेत्र पर नियंत्रण ढीला-ढाला था। उसी प्रकार इस राज्य की वित्त व्यवस्था भी असंतोषजनक थी। पोरबंदर राज्य ने सुंदरजी की फर्म से धन उधार ले रखा था, जिसको चुकाने के लिए राज्य के समस्त राजस्व स्त्रोतों को फर्म के पास कुछ वर्षों के लिए गिरवी रखना पड़ा था। नए दीवान उत्तमचंद ने इस कर्ज के दस्तावेजों का गहन अध्ययन किया, जिसमें इन्होंने एक महत्वपूर्ण बिंदु पाया कि कर्ज चुकाने के लिए केवल भू राजस्व तथा सीमा शुल्क से एकत्रित कर ही प्रयुक्त किया जाए, न कि राज्य के अन्य कर स्त्रोतों, जैसे - बिक्रीकर, स्टांप शुल्क आदि से। इस प्रकार इन छोटे-मोटे करों से राज्य को धन की काफी बचत हुई और धीरे-धीरे राज्य का कर्ज भी चुका दिया गया।[10]

1831 ई. में पोरबंदर के राणा हालोजी खिमोजीराज (1813 ई. -1831 ई.) की मृत्यु होने के कारण उनके 12 वर्षीय पुत्र विक्रमजी खिमोजीराज (1831-1900 ई.) को पोरबंदर का शासक बनाया गया, लेकिन अल्पवयस्क होने के कारण उसकी माँ रूपालीबा को उसकी संरक्षिका बनाया गया। एक बार इसकी नौकरानियों ने अलिखित रूप से कुछ वस्तुओं की माँग राज्य के कोषाधिकारी खीमा कोठारी से की, जिन्हें अनुपयुक्त पाते हुए उसने देने से मना कर दिया। अत: नौकरियों द्वारा रानी के कान भरे जाने के कारण उसे गिरफ्तार करने का आदेश दिया गया लेकिन उसने उत्तमचंद के घर में शरण प्राप्त की। उत्तमचंद का घर पत्थर का बना था। इस कारण रानी ने उनके घर की बाहरी दीवार तोड़ने के लिए तोपें भेजीं। तोप के गोलों के निशान काफी समय तक दीवारों पर रहे। उस समय उत्तमचंद की सुरक्षा में नियुक्त अरब सुरक्षाकर्मियों ने उत्तमचंद की रक्षा की। इन सुरक्षाकर्मियों का नेता गुलाम मोहम्मद मकरानी था, जो अरब का रहने वाला था।[11] इसने अपना जीवन उत्तमचंद की सुरक्षा में न्योछावर कर दिया, जिस कारण बाद में उत्तमचंद के घर के निकट श्रीनाथजी के वैष्णव मंदिर में इसकी याद में स्मारक बनवाया गया। इसी बीच रानी के मनमानी व्यवहार की खबर राजकोट में ब्रिटिश राजनीतिक एजेंट तक पहुंच गई, जिसके हस्तक्षेप से मामला शांत हुआ, लेकिन उत्तमचंद परिस्थितियों को विपरीत देखते हुए जूनागढ़ रियासत में स्थित अपने पैतृक गाँव कुटियाना चले गए। रानी ने इनके घर सहित सभी संपत्ति को जब्त कर लिया।[12] जैसे ही जूनागढ़ के नवाब को इनके आने के बारे में पता चला उसने इन्हें अपने दरबार में आमंत्रित किया। वहां इन्होंने जूनागढ़ के नवाब को बांये हाथ से अभिवादन (सेल्यूट) किया जिसका दरबारियों ने विरोध किया। इसका कारण पूछे जाने पर इन्होंने कहा कि दायाँ हाथ पोरबंदर के लिए गिरवी रखा जा चुका है।[13] इनका जवाब सुनकर जूनागढ़ का नवाब प्रसन्न हुआ, लेकिन दरबारियों के विरोध को वह शांत नहीं कर सका अत: नवाब ने उत्तमचंद को दंड के साथ-साथ पुरस्कार भी दिया। दंडस्वरूप इन्हें 10 मिनट तक धूप में नंगे पाँव

खड़े होना था, जबकि पुरस्कारस्वरूप नवाब में इन्हें कुटियाना गाँव का करभरी बनाया तथा इनके वंशजों को कुटियाना गाँव में व्यापार करने पर सीमा शुल्क से छूट दे दी।[14] फिर इन्होंने शेष जीवन कुटियाना में धार्मिक चर्चाओं व प्रार्थना में व्यतीत किया। यह वल्लभाचार्य के पुष्टिमार्ग के समर्थक थे। 1841 ई. में जब रानी माँ का कुशासन समाप्त हुआ तो राणा विक्रम जी ने इनकी संपत्ति बहाल की तथा इन्हें वापस पोरबंदर आने का आग्रह किया। उस समय इनका बड़ा पुत्र करमचंद राणा का निजी सहायक तथा पत्र लेखक था। उत्तमचंद द्वारा कोई पद ग्रहण किए जाने से मना करने पर करमचंद को संयुक्र करभरी बनाया गया।

उत्तमचंद की पहली पत्नी का नाम कदवीमाँ था। इनसे चार पुत्र बल्लभजी,रतनजी ,पीतांबर, जीवनलाल तथा एक पुत्री प्रेमकुंवर उत्पन्न हुए। पहली पत्नी की मृत्यु के बाद उन्होंने दूसरा विवाह किया। दूसरी पत्नी का नाम लक्ष्मीमाँ था, जिनसे इनके 2 पुत्र करमचंद या कबा गाँधी तथा तुलसीदास उत्पन्न हुए। यद्यपि उत्तमचंद का वेतन कम था फिर भी इनके बड़े बेटों बल्लभ जी, पीतांबर जी का विवाह धूमधाम से हुआ। इन्होंने उपहारस्वरूप प्राप्त धन राणा हालोजी को देते हुए कहा कि यह धन उनकी प्रजा का है। राणा ने पहले तो धन लेने से मना कर दिया, लेकिन उत्तमचंद द्वारा अडिग रहने पर उसे कोषागार में जमा करा दिया। राणा ने अपना बड़प्पन दिखाते हुए विवाह का खर्च अपने कोषागार से करते हुए कहा कि आपके बेटे मेरे बेटे हैं।[15]

उत्तमचंद के पाँचवें पुत्र करमचंद गाँधी (1822 ई.–नव.1885 ई.) सर्वप्रथम पोरबंदर राज्य में राणा विक्रम जी के निजी सहायक तथा पत्र लेखक पद पर नियुक्त हुए। इसके बाद 1847 ई. में यह दीवान पद पर नियुक्त हुए। 1867ई. में काठियावाड़ प्रायद्वीप में अपनी प्रशासनिक सुदृढ़ता बढ़ाने के लिए अंग्रेजों ने यहाँ के शासकों के कुछ विशेष मामलों में अपील के लिए राजकोट में एक अदालत बनायी, जिसमें इन्हें सदस्य बनाया गया। इस दौरान यह पोरबंदर की दीवानी अपने छोटे भाई तुलसीदास को सौंपकर राजकोट आ गए।[16] इनके राजकोट प्रवास के दौरान मोहनदास के जन्मवर्ष 1869 ई. में पोरबंदर के राणा द्वारा अप्रैल महीने में लुकमान या लक्ष्मण खवास नाम के गुलाम तथा एक अरब सिपाही की हत्या करा दी गई। गुलाम के नाक और कान काट डाले गए तथा वह महल की दीवार से गिरकर मर गया। इन मामलों पर अंग्रेज राणा द्वारा दिए गए तर्कों से प्रभावित नहीं हुए और सत्ता के दुरुपयोग किए जाने के कारण 10 सितंबर 1869 ई. को राणा का दर्जा प्रथम श्रेणी से घटाकर तृतीय श्रेणी कर दिया।[17] अर्थात् राणा से मृत्युदंड देने का अधिकार छीन लिया गया। इसके बाद इन्हें 1 सितंबर 1873 ई. में काठियावाड़ के शासकों, जमीदारों आदि के बीच जमीनी विवादों को सुलझाने के लिए राजकोट की राजस्थान कोर्ट के सदस्य नियुक्त किया गया। इस कोर्ट में एक अध्यक्ष व छह सदस्य थे। इसके बाद इन्हें 1874 ई. में राजकोट के ठाकुर बाबाजी राज द्वारा राजकोट का करभरी बनाया गया। 1875 ई. में इन्हें काठियावाड़ की रियासतों का सीमांकन करने के लिए बनी 'बाउंड्री कमेटी' का सदस्य राजकोट में ही नियुक्त किया गया। इनके कार्य से प्रभावित होकर ब्रिटिश राजनीतिक एजेंट कर्नल जे.डब्ल्यू. वाट्सन ने इन्हें 7 नवंबर 1876 ई. को राजकोट का दीवान नियुक्त किया। इनके पद के अनुरूप इन्हें दरबारगढ़ के निकट एक बड़ा मकान दिया गया।[18]

राजकोट के ही समान वांकानेर (वर्तमान गुजरात राज्य में स्थित) द्वितीय श्रेणी की रियासत थी। यह राजकोट से 25 मील उत्तर में स्थित थी। यहाँ के आय व क्षेत्रफ ल राजकोट से अधिक थे, लेकिन जनसंख्या उसकी तुलना में कम थी। भ्रष्टाचार के कारण शासक के लिए प्रशासन चिंता का प्रमुख विषय बन गया था, इसलिए वांकानेर के शासक ने करमचंद के मित्र नवलराम के आग्रह पर करमचंद को दीवान बनाने का प्रस्ताव रखा, लेकिन करमचंद ने कुछ शर्तें रखीं। पहली, उन्हें वांकानेर में कम से कम 5 वर्षों के लिए दीवान पद पर नियुक्त करना होगा। दूसरी, वे उच्च वर्ग के अधिकारियों को छोड़कर समस्त अधिकारियों की नियुक्ति, बर्खास्तगी व स्थानांतरण राजा के बिना हस्तक्षेप से करेंगे, तीसरी, यह भू–राजस्व के स्थान पर प्राप्त कृषि उत्पादों की नीलामी करेंगे। चौथी, यदि 5 वर्ष से पूर्व शासक उन्हें

पद से हटा देता है तो इन्हें 5 साल का वेतन मिलेगा, जो पहले ही चार प्रमुख व्यवसायियों के पास जमा करा दिया जाएगा। वांकानेर के राजा ने इनकी सारी शर्तें मानी[19] तथा 600 रुपये प्रति माह के वेतन पर इन्हें 28 अप्रैल 1878 ई. को वाकानेर के दीवान पद पर नियुक्त किया। इन्होंने अनेक प्रशासनिक सुधार किए, लेकिन राजा के हस्तक्षेप के कारण यह दीवान पद 8 जनवरी 1879 ईसवी को छोड़कर राजकोट लौट आए। यहाँ 4 अप्रैल 1879 ई. को पुन: दीवान नियुक्त हो गए। पोरबंदर की तुलना में राजकोट में दीवानी-कार्य संघर्षपूर्ण थे।

करमचंद गाँधी ने अपनी भगंदर बीमारी के कारण पद से त्यागपत्र देना चाहा लेकिन राजकोट के ठाकुर साहब ने विभाग किसी अन्य व्यक्ति को न देकर स्वयं रख लिया तथा इनके स्वस्थ होने की प्रतीक्षा करते रहे। थोड़ा स्वस्थ होने पर करमचंद ने लगभग 1 वर्ष तक घर से ही दीवानी का कार्य किया, लेकिन ठाकुर साहब व उनके संबंधियों के बीच जमीनी विवाद में इनके द्वारा संबंधियों को सही ठहराया गया, जिससे ठाकुर साहब नाराज हो गए और अंतत: इन्होंने त्यागपत्र दे दिया और नवंबर 1885 ई. में अपनी मृत्यु तक यह राजकोट से 50 रुपए प्रतिमाह की दर से पेंशन प्राप्त करते रहे। [20]

करमचंद गाँधी के चार विवाह हुए। इनका पहला विवाह 14 वर्ष की आयु में हुआ, जिनसे इनकी एक पुत्री मूलीबेन उत्पन्न हुई। पहली पत्नी की मृत्यु के बाद इनका दूसरा विवाह इनकी 25 वर्ष की आयु में हुआ, जिससे पानकुंवरबेन पुत्री उत्पन्न हुई। दोनों पत्नियों की मृत्यु के बाद इनका तीसरा विवाह हुआ, जिससे इन्हें कोई संतान नहीं हुई। इन्होंने वंश को आगे बढ़ाने के लिए तीसरी पत्नी से चौथे विवाह की अनुमति माँगी। उन्होंने इसकी अनुमति दे दी, लेकिन गाँधीजी के अनुसार एक जीवित पत्नी होने तथा अधिक उम्र होने के कारण इनके पिता करमचंद गांधी को अपनी जाति की कोई स्त्री विवाह के लिए नहीं मिल सकी। अत: इन्होंने 1857 ई. में निम्न जाति की स्त्री पुतलीबाई (1844 ई.-1891 ई.) से चौथा विवाह किया, [21] जो जूनागढ़ रियासत के धंत्रना की रहने वाली थी। इनके माता-पिता प्रणामी या सतप्रणामी या प्राणनाथी पंथ के अनुयाई थे, जिसमें हिंदू एवं मुस्लिम धर्म के तत्वों का मिश्रण था।[22] पुतलीबाई से 4 संतानें क्रमश: लक्ष्मीदास (कालिदास), रलियतबेन (गोकीबेन), कृष्णदास और मोहनदास के जन्म हुए।

करमचंद गाँधी के द्वारा तीन रियासतों की दीवानी संभाले जाने के बावजूद भी मोह माया उनका मन न जीत सकी। इनके हृदय में धन एकत्रण की कोई इच्छा न थी तथा बहुत कम संपत्ति छोड़ गए। यद्यपि उन्हें शैक्षिक ज्ञान नहीं था, लेकिन अनुभवी का ज्ञान पर्याप्त था।[23] मोहनदास ने अपने पिता के धन संग्रह न करने के विचारों को इस प्रकार एक साक्षात्कार में व्यक्त किया कि 'यद्यपि मेरे पिता एक से ज्यादा देसी रियासतों के दीवान रहे थे, लेकिन उन्होंने कभी धन संग्रह नहीं किया।[24] वे घर के कामों को भी यथासंभव करने का प्रयास करते थे। वे राज्य के अधिकारियों या मेहमानों से बात करते हुए श्रीनाथ जी के मंदिर में सब्जी छीला व काटा करते थे।[25]

मोहनदास की माता पुतलीबाई बहुत धार्मिक महिला थी। वे अपनी प्रतिदिन की पूजा के बिना भोजन ग्रहण नहीं करती थी। हवेली के वैष्णव मंदिर जाना इनकी प्रतिदिन के कर्तव्य में से एक था। यह सदैव एक मंत्र उच्चारित करती थी 'श्री कृष्णरू शरणं मम'। वे निरक्षर होने के कारण गीता पढ़ने में असमर्थ थी।[26] एक बार जब वह चंद्रयान व्रत पर थी, तब वह बीमार पड़ गई, लेकिन बीमारी में भी उन्होंने व्रत नहीं तोड़ा। लगातार 2 या 3 दिन व्रत रहना उनके लिए कोई बड़ी बात नहीं थी। यह चतुर्मास (चौमासे) में भिन्न-भिन्न तरीके से व्रत रखा करती थी। एक बार एक चतुर्मास में इन्होंने एक दिन छोड़कर खाना खाया। एक अन्य चतुर्मास के दौरान इन्होंने सूरज देखने पर ही भोजन करने का प्रण लिया।[27] उपवास की महिमा का ज्ञान मोहनदास को अपनी माता जी से प्राप्त हुआ, [28] लेकिन मोहनदास को इनकी रूढ़िवादिता पसंद नहीं थी। जैसे सूर्य ग्रहण या चंद्र ग्रहण के अवसर पर घर में खाना न पकाना, एकादशी पर घर में चुनिंदा भोजनों का बनना आदि।[29] वह घर में सबसे पहले उठती थी तथा सबसे अंत में सोने जाती थी। सभी को खाना खिलाने के बाद ही खाना खाती थी। इसके बावजूद वे सदैव प्रसन्न रहती थी। किसी ने

भी उनकी ऊंची आवाज नहीं सुनी थी। उन्होंने अपने बच्चों व अन्य बच्चों में कभी भी भेदभाव नहीं किया। वह साधारण कपड़े पहनती थी। राजघराने से जुड़ी होने के कारण वे राज्य के सभी मामलों की जानकार थी। वे राजकोट के ठाकुर साहब की विधवा माँ से राजकाज के मामलों की चर्चा करती रहती थी।[30]

शोध सार : उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि मोहनदास करमचंद गाँधी के पूर्वज लालजी गांधी पैतृक गाँव कुटियाना के निवासी थे। इसके बाद उनके वंशज विभिन्न रियासतों में दफ्तरी पद पर नियुक्त रहे फिर दीवानी पद पर पहली बार उत्तमचंद आसीन हुए। इसके बाद इस पद पर इनके पुत्र करमचंद भी नियुक्त हुए। व्यावहारिक दृष्टि से मोहनदास के पूर्वज उदार, दयालु एवं जनहित की भावना से प्रेरित थे। इन लक्षणों की मोहनदास में वंशागति भी हुई, जिस कारण इन्होंने भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में सक्रिय भूमिका निभाई।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. जेम्स डी. हंट, गाँधी इन लंदन, प्रोमिला एंड कंपनी पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1978, पृष्ठ संख्या 2
2. प्यारेलाल, महात्मा गांधी: द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1 ,नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ,1986, पृष्ठ संख्या 174
3. बी.आर. नंदा (अनुवादक-शंभू सन्यासी), महात्मा गाँधी: एक जीवनी, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1965, पृष्ठ संख्या 2
4. प्यारेलाल, महात्मा गाँधी: द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1 ,नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ,1986, पृष्ठ संख्या 174
5. प्रभुदास गाँधी, माय चाइल्डहुड विद गाँधीजी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1957, पृष्ठ संख्या 9
6. प्यारेलाल, महात्मा गांधी: द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1 ,नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ,1986, पृष्ठ संख्या 175
7. प्रभुदास गाँधी, माय चाइल्डहुड विद गांधीजी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1957, पृष्ठ संख्या11
8. राजमोहन गाँधी, मोहनदास: ए ट्रयू स्टोरी ऑफए मैन,हिज पीपल एंड एन एंपायर, पेंगुइन इंडिया पब्लिकेशन, 2007, पृष्ठ संख्या 2
9. प्यारेलाल, महात्मा गांधी: द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1 ,नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ,1986, पृष्ठ संख्या175
10. प्रभुदास गाँधी, माय चाइल्डहुड विद गांधीजी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1957, पृष्ठ संख्या 12
11. वही पृष्ठ संख्या 13
12. प्यारेलाल, महात्मा गांधी: द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1 ,नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ,1986, पृष्ठ संख्या 176-178
13. द स्टोरी ऑफमाय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, महात्मा गाँधी (अंग्रेजी अनुवादकरू महादेव देसाई), नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1927, पृष्ठ संख्या 15
14. प्यारेलाल, महात्मा गाँधी: द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1,नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ,1986, पृष्ठ संख्या 178
15. प्रभुदास गाँधी, माय चाइल्डहुड विद गांधीजी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1957, पृष्ठ संख्या 15
16. बी.आर. नंदा (अनुवादक-शंभू सन्यासी), महात्मा गाँधी: एक जीवनी, सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, 1965, पृष्ठ संख्या 4
17. प्यारेलाल, महात्मा गाँधी: द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1 ,नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ,1986, पृष्ठ संख्या 181
18. जे. एम. उपाध्याय, महात्मा गाँधी ए टीचर्स डिस्कवरी ,सरदार पटेल विश्वविद्यालय, पृष्ठ संख्या 7
19. प्रभुदास गाँधी, माय चाइल्डहुड विद गांधीजी, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद, 1957, पृष्ठ संख्या 20
20. प्यारेलाल, महात्मा गाँधी: द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1 ,नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ,1986, पृष्ठ संख्या 187
21. वही, पृष्ठ संख्या 186
22. वही, पृष्ठ संख्या 213-214
23. द स्टोरी ऑफमाय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, महात्मा गांधी (अंग्रेजी अनुवादकरू महादेव देसाई), नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1927, पृष्ठ संख्या 17
24. कलेक्टेड वर्क्स ऑफमहात्मा गाँधी, वॉल्यूम 1, पृष्ठ संख्या 42
25. प्यारेलाल, महात्मा गांधी: द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1 ,नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ,1986, पृष्ठ संख्या 192
26. वही, पृष्ठ संख्या 201
27. द स्टोरी ऑफमाय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, महात्मा गाँधी (अंग्रेजी अनुवादकरू महादेव देसाई), नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1927, पृष्ठ संख्या 19
28. महात्मा गाँधी,सत्यकाम विद्यालंकार, राजपाल एंड संस पब्लिकेशन, दिल्ली, पृष्ठ संख्या 5
29. प्यारेलाल, महात्मा गांधीरू द अर्ली फेज, वॉल्यूम 1 ,नवजीवन पब्लिशिंग हाउस, अहमदाबाद ,1986, पृष्ठ संख्या 201
30. द स्टोरी ऑफमाय एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ, महात्मा गाँधी (अंग्रेजी अनुवादकरू महादेव देसाई), नवजीवन प्रेस, अहमदाबाद, 1927, पृष्ठ संख्या 20

अध्यक्ष, इतिहास विभाग, मिहिर भोज पी. जी. कॉलेज,
दादरी-ग्रेटर नोएडा, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश
पता-E-1003, ग्रीन आर्च सोसायटी, एक मूर्ति बुद्ध क्रॉसिंग के निकट,
ग्रेटर नोएडा-201306, गौतम बुद्ध नगर, उत्तर प्रदेश,
मो. 8171853145, ईमेल आईडी . surya9587@gmail.com

कफन

✍ प्रेमचंद

साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज में जो कुछ भी घटित होता है, उसका प्रतिबिंब साहित्य में दिखाई देता है। इस लिहाज से हिंदी कहानी-जगत अत्यंत समृद्ध है। महान रचनाकारों प्रेमचंद, भारतेंदु हरिश्चंद्र, महादेवी वर्मा आदि ने जब अपनी कलम चलाई तो उससे निकले पात्र मानो जी उठे। द्विभाषी राष्ट्रसेवक ने अपने हर अंक में आपके लिए देशी-विदेशी लेखकों की ऐसी एक प्रतिनिधि कहानी प्रकाशित करने का निश्चय किया है ताकि समाज और समाज के बीच एक सेतु बना रहे और रोजमर्रा की व्यस्त जिंदगी में भी आप साहित्य रस का आनंद उठा पाएँ। इस क्रम में इस बार प्रस्तुत है प्रेमचंद की कहानी 'कफन'।

-संपादक

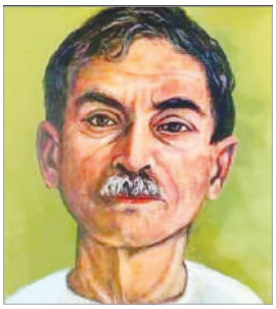

1

झोपड़े के द्वार पर बाप और बेटा दोनों एक बुझे हुए अलाव के सामने चुपचाप बैठे हुए हैं और अंदर बेटे की जवान बीबी बुधिया प्रसव-वेदना में पछाड़ खा रही थी। रह-रहकर उसके मुँह से ऐसी दिल हिला देने वाली आवाज निकलती थी कि दोनों कलेजा थाम लेते थे। जाड़ों की रात थी, प्रकृति सन्नाटे में डूबी हुई, सारा गाँव अंधकार में लय हो गया था।

घीसू ने कहा- मालूम होता है, बचेगी नहीं। सारा दिन दौड़ते हो गया, जा देख तो आ।

माधव चिढ़कर बोला- मरना ही तो है जल्दी मर क्यों नहीं जाती? देखकर क्या करूँ?

तू बड़ा बेदर्द है बे! साल-भर जिसके साथ सुख-चैन से रहा, उसी के साथ इतनी बेवफाई!

मुझसे तो उसका तड़पना और हाथ-पाँव पटकना नहीं देखा जाता।

चमारों का कुनबा था और सारे गाँव में बदनाम। घीसू एक दिन काम करता तो तीन दिन आराम करता। माधव इतना कामचोर था कि आधे घंटे काम करता तो घंटे भर चिलम पीता। इसलिए उन्हें कहीं मजदूरी नहीं मिलती थी। घर में मुट्ठी-भर भी अनाज मौजूद हो, तो उनके लिए काम करने की कसम थी। जब दो-चार फाके हो जाते तो घीसू पेड़ पर चढ़कर लकड़ियाँ तोड़ लाता और माधव बाजार से बेच लाता और जब तक वह पैसे रहते, दोनों इधर-उधर मारे-मारे फिरते। गाँव में काम की कमी न थी। किसानों का गाँव था, मेहनती आदमी के लिए पचास काम थे। मगर इन दोनों को उसी वक्त बुलाते, जब दो आदमियों से एक का काम पाकर भी संतोष कर लेने के सिवा और कोई चारा न होता। अगर दोनों साधु होते, तो उन्हें संतोष और धैर्य के लिए, संयम और नियम की बिलकुल जरूरत न होती। यह तो इनकी प्रकृति थी। विचित्र जीवन था इनका! घर में मिट्टी के

दो-चार बर्तन केसिवा कोई संपत्ति नहीं। फटे चीथड़ों से अपनी नग्नता को ढाँके हुए जिये जाते थे। संसार की चिंताओं से मुक्त कर्ज से लदे हुए। गालियाँ भी खाते, मार भी खाते, मगर कोई गम नहीं। दीन इतने कि वसूली की बिल्कुल आशा न रहने पर भी लोग इन्हें कुछ-न-कुछ कर्ज दे देते थे। मटर, आलू की फसल में दूसरों के खेतों से मटर या आलू उखाड़ लाते और भून-भानकर खा लेते या दस-पाँच ऊख उखाड़ लाते और रात को चूसते। घीसू ने इसी आकाश-वृत्ति से साठ साल की उम्र काट दी और माधव भी सपूत बेटे की तरह बाप ही के पद-चिह्नों पर चल रहा था, बल्कि उसका नाम और भी उजागर कर रहा था। इस वक्त भी दोनों अलाव के सामने बैठकर आलू भून रहे थे, जो कि किसी खेत से खोद लाए थे। घीसू की स्त्री का तो बहुत दिन हुए, देहांत हो गया था। माधव का ब्याह पिछले साल हुआ था। जब से यह औरत आई थी, उसने इस खानदान में व्यवस्था की नींव डाली थी और इन दोनों बे-गैरतों का दोजख भरती रहती थी। जब से वह आई, यह दोनों और भी आरामतलब हो गए थे। बल्कि कुछ अकड़ने भी लगे थे। कोई कार्य करने को बुलाता, तो निर्ब्याज भाव से दुगुनी मजदूरी माँगते। वही औरत आज प्रसव-वेदना से मर रही थी और यह दोनों इसी इंतजार में थे कि वह मर जाए तो आराम से सोयें।

घीसू ने आलू निकालकर छीलते हुए कहा-जाकर देख तो, क्या दशा है उसकी? चुड़ैल का फिसाद होगा, और क्या? यहाँ तो ओझा भी एक रुपया माँगता है!

माधव को भय था, कि वह कोठरी में गया तो घीसू आलुओं का बड़ा भाग साफ कर देगा। बोला-मुझे वहाँ जाते डर लगता है।

डर किस बात का है, मैं तो यहाँ हूँ ही।

तो तुम्हीं जाकर देखो न?

मेरी औरत जब मरी थी, तो मैं तीन दिन तक उसके पास से हिला तक नहीं; और फिर मुझसे लजाएगी कि नहीं? जिसका कभी मुँह नहीं देखा, आज उसका उघड़ा हुआ बदन देखूँ! उसे तन की सुध भी तो न होगी? मुझे देख लेगी तो खुलकर हाथ-पाँव भी न पटक सकेगी!

मैं सोचता हूँ कोई बाल-बच्चा हुआ, तो क्या होगा? सोंठ, गुड़, तेल, कुछ भी तो नहीं है घर में!

सब कुछ आ जाएगा। भगवान दें तो! जो लोग अभी एक पैसा नहीं दे रहे हैं, वे ही कल बुलाकर रुपए देंगे। मेरे नौ लड़के हुए, घर में कभी कुछ न था; मगर भगवान ने किसी-न-किसी तरह बेड़ा पार ही लगाया।

जिस समाज में रात-दिन मेहनत करने वालों की हालत उनकी हालत से कुछ बहुत अच्छी न थी, और किसानों के मुकाबले में वे लोग, जो किसानों की दुर्बलताओं से लाभ उठाना जानते थे, कहीं ज्यादा संपन्न थे, वहाँ इस तरह की मनोवृत्ति का पैदा हो जाना कोई अचरज की बात न थी। हम तो कहेंगे, घीसू किसानों से कहीं ज्यादा विचारवान था और किसानों के विचार-शून्य समूह में शामिल होने के बदले बैठकबाजों की कुत्सित मंडली में जा मिला था। हाँ, उसमें यह शक्ति न थी कि बैठकबाजों के नियम और नीति का पालन करता। इसलिए जहाँ उसकी मंडली के और लोग गाँव के सरगना और मुखिया बने हुए थे, उस पर सारा गाँव उँगली उठाता था। फिर भी उसे यह तसकीन तो थी ही कि अगर वह फटेहाल है तो कम-से-कम उसे किसानों की-सी जी-तोड़ मेहनत तो नहीं करनी पड़ती, और उसकी सरलता और निरीहता से दूसरे लोग बेजा फायदा तो नहीं उठाते! दोनों आलू निकाल-निकालकर जलते-जलते खाने लगे। कल से कुछ नहीं खाया था। इतना सब्र न था कि ठंडा हो जाने दें। कई बार दोनों की जबानें जल गईं। छिल जाने पर आलू का बाहरी हिस्सा जबान, हलक और तालू को जला देता था और उस अंगारे को मुँह में रखने से ज्यादा खैरियत इसी में थी कि वह अंदर पहुँच जाए। वहाँ उसे ठंडा करने के लिए काफी सामान थे। इसलिए दोनों जल्द-जल्द निगल जाते। हालाँकि इस कोशिश में उनकी आँखों से आँसू निकल आते।

घीसू को उस वक्त ठाकुर की बारात याद आई, जिसमें बीस साल पहले वह गया था। उस दावत में उसे जो तृप्ति मिली थी, वह उसके जीवन में एक याद रखने लायक बात थी, और आज भी उसकी याद ताजी थी। बोला-वह भोज नहीं भूलता। तब से फिर उस तरह का खाना और भरपेट नहीं मिला। लड़की वालों ने सबको भर पेट पूड़ियाँ खिलाई थीं, सबको! छोटे-बड़े सबने

पूड़ियाँ खाईं और असली घी की! चटनी, रायता, तीन तरह के सूखे साग, एक रसेदार तरकारी, दही, चटनी, मिठाई, अब क्या बताऊँ कि उस भोज में क्या स्वाद मिला, कोई रोक-टोक नहीं थी, जो चीज चाहो, माँगो, जितना चाहो, खाओ। लोगों ने ऐसा खाया, ऐसा खाया, कि किसी से पानी न पिया गया। मगर परोसने वाले हैं कि पत्तल में गर्म-गर्म, गोल-गोल सुवासित कचौड़ियाँ डाल देते हैं। मना करते हैं कि नहीं चाहिए, पत्तल पर हाथ रोकेहुए हैं, मगर वह हैं कि दिए जाते हैं। और जब सबने मुँह धो लिया, तो पान-इलायची भी मिली। मगर मुझे पान लेने की कहाँ सुध थी? खड़ा हुआ न जाता था। चटपट जाकर अपने कंबल पर लेट गया। ऐसा दिल-दरियाव था वह ठाकुर!

माधव ने इन पदार्थों का मन-ही-मन मजा लेते हुए कहा- अब हमें कोई ऐसा भोज नहीं खिलाता।

अब कोई क्या खिलाएगा? वह जमाना दूसरा था। अब तो सबको किफायत सूझती है। सादी-ब्याह में मत खर्च करो, क्रिया-कर्म में मत खर्च करो। पूछो, गरीबों का माल बटोर-बटोरकर कहाँ रखोगे? बटोरने में तो कमी नहीं है। हाँ, खर्च में किफायत सूझती है!

तुमने एक बीस पूड़ियाँ खाई होंगी?

बीस से ज्यादा खाई थीं!

मैं पचास खा जाता!

पचास से कम मैंने न खाई होंगी। अच्छा पका था। तू तो मेरा आधा भी नहीं है।

आलू खाकर दोनों ने पानी पिया और वहीं अलाव के सामने अपनी धोतियाँ ओढ़कर पाँव पेट में डाले सो रहे। जैसे दो बड़े-बड़े अजगर गेंडुलिया मारे पड़े हों।

और बुधिया अभी तक कराह रही थी।

2

सवेरे माधव ने कोठरी में जाकर देखा, तो उसकी स्त्री ठंडी हो गई थी। उसके मुँह पर मक्खियाँ भिनक रही

थीं। पथराई हुई आँखें ऊपर टंगी हुई थीं। सारी देह धूल से लथपथ हो रही थी। उसके पेट में बच्चा मर गया था।

माधव भागा हुआ घीसू के पास आया। फिर दोनों जोर-जोर से हाय-हाय करने और छाती पीटने लगे। पड़ोस वालों ने यह रोना-धोना सुना, तो दौड़े हुए आए और पुरानी मर्यादा के अनुसार इन अभागों को समझाने लगे।

मगर ज्यादा रोने-पीटने का अवसर न था। कफन की और लकड़ी की फिक्र करनी थी। घर में तो पैसा इस तरह गायब था, जैसे चील के घोंसले में माँस?

बाप-बेटे रोते हुए गाँव के जमींदार के पास गए। वह इन दोनों की सूरत से नफरत करते थे। कई बार इन्हें अपने हाथों से पीट चुके थे। चोरी करने के लिए, वादे पर काम पर न आने के लिए। पूछा- क्या है बे घिसुआ, रोता क्यों है? अब तो तू कहीं दिखलाई भी नहीं देता! मालूम होता है, इस गाँव में रहना नहीं चाहता।

घीसू ने जमीन पर सिर रखकर आँखों में आँसू भरे हुए कहा, सरकार! बड़ी विपत्ति में हूँ। माधव की घरवाली रात को गुजर गई। रात-भर तड़पती रही सरकार! हम दोनों उसके सिरहाने बैठे रहे। दवा-दारू जो कुछ हो सका, सब कुछ किया, मुदा वह हमें दगा दे गई। अब कोई एक रोटी देने वाला भी न रहा मालिक! तबाह हो गए। घर उजड़ गया। आपका गुलाम हूँ, अब आपके सिवा कौन उसकी मिट्टी पार लगाएगा। हमारे हाथ में तो जो कुछ था, वह सब तो दवा-दारू में उठ गया। सरकार ही की दया होगी, तो उसकी मिट्टी उठेगी। आपके सिवा किसके द्वार पर जाऊँ।

जमींदार साहब दयालु थे। मगर घीसू पर दया करना काले कंबल पर रंग चढ़ाना था। जी में तो आया, कह दें, चल, दूर हो यहाँ से। यों तो बुलाने से भी नहीं आता, आज जब गरज पड़ी तो आकर खुशामद कर रहा है। हरामखोर कहीं का, बदमाश! लेकिन यह क्रोध या दंड देने का अवसर न था। जी में कुढ़ते हुए दो रुपए निकालकर फेंक दिए। मगर सांत्वना का एक शब्द भी मुँह से न निकला। उसकी तरफ ताका तक नहीं। जैसे सिर का बोझ उतारा हो।

जब जमींदार साहब ने दो रुपए दिए, तो गाँव के बनिये-महाजनों को इनकार का साहस कैसे होता? घीसू जमींदार के नाम का ढिंढोरा भी पीटना जानता था। किसी ने दो आने दिए, किसी ने चार आने। एक घंटे में घीसू के पास पाँच रुपए की अच्छी रकम जमा हो गई। कहीं से अनाज मिल गया, कहीं से लकड़ी और दोपहर को घीसू और माधव बाजार से कफन लाने चले। इधर लोग बाँस-वास काटने लगे।

गाँव की नर्मदिल स्त्रियाँ आ-आकर लाश देखती थीं और उसकी बेकसी पर दो बूँद आंसू गिराकर चली जाती थीं।

3

बाजार में पहुँचकर घीसू बोला, लकड़ी तो उसे जलाने-भर को मिल गई है, क्यों माधव!

माधव बोला, हाँ, लकड़ी तो बहुत है, अब कफन चाहिए।

तो चलो, कोई हलका-सा कफन ले लें।

हाँ, और क्या! लाश उठते-उठते रात हो जाएगी। रात को कफन कौन देखता है?

कैसा बुरा रिवाज है कि जिसे जीते जी तन ढाँकने को चीथड़ा भी न मिले, उसे मरने पर नया कफन चाहिए।

कफन लाश के साथ जल ही तो जाता है।

और क्या रखा रहता है? यही पाँच रुपए पहले मिलते, तो कुछ दवा-दारू कर लेते।

दोनों एक-दूसरे के मन की बात ताड़ रहे थे। बाजार में इधर-उधर घूमते रहे। कभी इस बजाज की दुकान पर गए, कभी उसकी दुकान पर! तरह-तरह के कपड़े, रेशमी और सूती देखे, मगर कुछ जँचा नहीं। यहाँ तक कि शाम हो गई। तब दोनों न जाने किस दैवीय प्रेरणा से एक मधुशाला के सामने जा पहुँचे। और जैसे किसी पूर्व निश्चित व्यवस्था से अंदर चले गए। वहाँ जरा देर तक दोनों असमंजस में खड़े रहे। फिर घीसू ने गद्दी के सामने जाकर कहा-साहूजी, एक बोतल हमें भी देना।

उसके बाद कुछ चिखौना आया, तली हुई मछली आई और दोनों बरामदे में बैठकर शांतिपूर्वक पीने लगे।

कई कुज्जियाँ ताबड़तोड़ पीने के बाद दोनों सरूर में आ गए।

घीसू बोला, कफन लगाने से क्या मिलता? आखिर

जल ही तो जाता। कुछ बहू के साथ तो न जाता।

माधव आसमान की तरफ देखकर बोला, मानों देवताओं को अपनी निष्पापता का साक्षी बना रहा हो, दुनिया का दस्तूर है, नहीं लोग बाभनों को हजारों रुपए क्यों दे देते हैं? कौन देखता है, परलोक में मिलता है या नहीं!

बड़े आदमियों के पास धन है, फूँकें। हमारे पास फूँकने को क्या है?

लेकिन लोगों को जवाब क्या दोगे? लोग पूछेंगे नहीं.., कफन कहाँ है?

घीसू हँसा, अबे, कह देंगे कि रुपए कमर से खिसक गए। बहुत ढूँढ़ा, मिले नहीं। लोगों को विश्वास न आएगा, लेकिन फिर वही रुपए देंगे।

माधव भी हँसा-इस अनपेक्षित सौभाग्य पर. बोला, बड़ी अच्छी थी बेचारी! मरी तो खूब खिला-पिलाकर!

आधी बोतल से ज्यादा उड़ गई। घीसू ने दो सेर पूड़ियाँ मँगाई। चटनी, अचार, कलेजियाँ। शराबखाने के सामने ही दुकान थी। माधव लपककर दो पत्तलों में सारे सामान ले आया। पूरा डेढ़ रुपया खर्च हो गया। सिर्फ थोड़े से पैसे बच रहे।

दोनों इस वक्त इस शान में बैठे पूड़ियाँ खा रहे थे जैसे जंगल में कोई शेर अपना शिकार उड़ा रहा हो। न जवाबदेही का खौफ था, न बदनामी की फिक्र। इन सब भावनाओं को उन्होंने बहुत पहले ही जीत लिया था।

घीसू दार्शनिक भाव से बोला, हमारी आत्मा प्रसन्न हो रही है तो क्या उसे पुन्न न होगा?

माधव ने श्रद्धा से सिर झुकाकर तसदीक की-जरूर-से-जरूर होगा। भगवान, तुम अंतर्यामी हो। उसे बैकुंठ ले जाना। हम दोनों हृदय से आशीर्वाद दे रहे हैं। आज जो भोजन मिला वह कभी उम्र-भर न मिला था।

एक क्षण के बाद माधव के मन में एक शंका जागी। बोला, क्यों दादा, हम लोग भी एक-न-एक दिन वहाँ जाएँगे ही?

घीसू ने इस भोले-भाले सवाल का कुछ उत्तर न दिया। वह परलोक की बातें सोचकर इस आनंद में बाधा न डालना चाहता था।

जो वहाँ हम लोगों से पूछे कि तुमने हमें कफन क्यों

घीसू ने कहा, ले जा, खूब खा और आशीर्वाद दे! जिसकी कमाई है, वह तो मर गई। मगर तेरा आशीर्वाद उसे जरूर पहुंचेगा। रोयें-रोयें से आशीर्वाद दो, बड़ी गाढ़ी कमाई केपैसे हैं!

माधव ने फिर आसमान की तरफ देखकर कहा, वह बैकुंठ में जाएगी दादा, बैकुंठ की रानी बनेगी।

घीसू खड़ा हो गया और जैसे उल्लास की लहरों में तैरता हुआ बोला, हां, बेटा बैकुंठ में जाएगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते-मरते हमारी जिंदगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गई। वह न बैकुंठ जाएगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जाएंगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं, और अपने पाप को धोने केलिए गंगा में नहाते हैं और मंदिरों में जल चढ़ाते हैं?

नहीं दिया तो क्या कहोगे?

कहेंगे तुम्हारा सिर!

पूछेगी तो जरूर!

तू कैसे जानता है कि उसे कफन न मिलेगा? तू मुझे ऐसा गधा समझता है? साठ साल क्या दुनिया में घास खोदता रहा हूँ? उसको कफन मिलेगा और बहुत अच्छा मिलेगा!

माधव को विश्वास न आया। बोला, कौन देगा? रुपए तो तुमने चट कर दिए। वह तो मुझसे पूछेगी। उसकी मांग में तो सेंदुर मैंने डाला था। कौन देगा, बताते क्यों नहीं?

वही लोग देंगे, जिन्होंने अबकी दिया। हाँ, अबकी रुपए हमारे हाथ न आएँगे।

ज्यों-ज्यों अंधेरा बढ़ता था और सितारों की चमक तेज होती थी, मधुशाला की रौनक भी बढ़ती जाती थी। कोई गाता था, कोई डींग मारता था, कोई अपने संगी के गले लिपटा जाता था। कोई अपने दोस्त के मुँह में

कुल्हड़ लगाए देता था।

वहाँ के वातावरण में सरूर था, हवा में नशा। कितने तो यहाँ आकर एक चुल्लू में मस्त हो जाते थे। शराब से ज्यादा यहाँ की हवा उन पर नशा करती थी। जीवन की बाधाएँ यहाँ खींच लाती थीं और कुछ देर के लिए यह भूल जाते थे कि वे जीते हैं या मरते हैं। या न जीते हैं, न मरते हैं।

और यह दोनों बाप-बेटे अब भी मजे ले-लेकर चुसकियाँ ले रहे थे। सबकी निगाहें इनकी ओर जमी हुई थीं। दोनों कितने भाग्य के बली हैं! पूरी बोतल बीच में है।

भरपेट खाकर माधव ने बची हुई पूड़ियों का पत्तल उठाकर एक भिखारी को दे दिया, जो खड़ा इनकी ओर भूखी आँखों से देख रहा था। और देने के गौरव, आनंद और उल्लास का अपने जीवन में पहली बार अनुभव किया।

घीसू ने कहा, ले जा, खूब खा और आशीर्वाद दे! जिसकी कमाई है, वह तो मर गई। मगर तेरा आशीर्वाद उसे जरूर पहुँचेगा। रोयें-रोयें से आशीर्वाद दो, बड़ी गाढ़ी कमाई के पैसे हैं!

माधव ने फिर आसमान की तरफ देखकर कहा, वह बैकुंठ में जाएगी दादा, बैकुंठ की रानी बनेगी।

घीसू खड़ा हो गया और जैसे उल्लास की लहरों में तैरता हुआ बोला, हाँ, बेटा बैकुंठ में जाएगी। किसी को सताया नहीं, किसी को दबाया नहीं। मरते-मरते हमारी जिंदगी की सबसे बड़ी लालसा पूरी कर गई। वह न बैकुंठ जाएगी तो क्या ये मोटे-मोटे लोग जाएँगे, जो गरीबों को दोनों हाथों से लूटते हैं, और अपने पाप को धोने के लिए गंगा में नहाते हैं और मंदिरों में जल चढ़ाते हैं?

श्रद्धालुता का यह रंग तुरंत ही बदल गया। अस्थिरता नशे की खासियत है। दु:ख और निराशा का दौरा हुआ।

माधव बोला, मगर दादा, बेचारी ने जिंदगी में बड़ा दुख भोगा। कितना दुख झेलकर मरी!

वह आँखों पर हाथ रखकर रोने लगा। चीखें मार-मारकर।

घीसू ने समझाया, क्यों रोता है बेटा, खुश हो कि वह माया-जाल से मुक्त हो गई, जंजाल से छूट गई। बड़ी भाग्यवान थी, जो इतनी जल्द माया-मोह के बंधन तोड़ दिए।

और दोनों खड़े होकर गाने लगे-

ठगिनी क्यों नैना झमकावे! ठगिनी..

पियक्कड़ों की आँखें इनकी ओर लगी हुई थीं और यह दोनों अपने दिल में मस्त गाए जाते थे। फिर दोनों नाचने लगे। उछले भी, कूदे भी। गिरे भी, मटके भी। भाव भी बताए, अभिनय भी किए। और आखिर नशे में मदमस्त होकर वहीं गिर पड़े।

❑❑❑

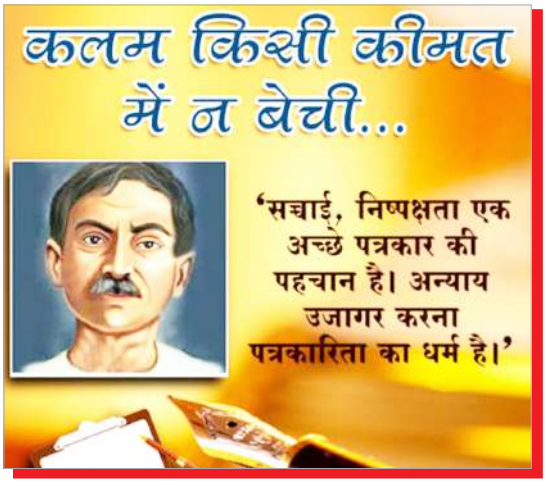

সাহিত্য

চেতনা স্ৰোতৰ আলোকত ভূপেন্দ্ৰ নাৰায়ণ ভট্টাচাৰ্যৰ গল্প

✍ ড° অম্বেশ্বৰ গগৈ
সহকাৰী অধ্যাপক
অসমীয়া বিভাগ, কটন বিশ্ববিদ্যালয়,
গুৱাহাটী - ৭৮১০০১, অসম

✍ শ্ৰী গীতাশ্ৰী শইকীয়া
গৱেষক ছাত্ৰী
অসমীয়া বিভাগ, কটন বিশ্ববিদ্যালয়,
গুৱাহাটী - ৭৮১০০১, অসম

০.০০ প্ৰস্তাৱনা ঃ

বিংশ শতিকাৰ প্ৰথমভাগত পাশ্চাত্যৰ শিল্প-সাহিত্যৰ জগতখনত আধুনিকতাবাদী আন্দোলনৰ সৃষ্টি হয়। ঔদ্যোগিক বিপ্লৱ, বিজ্ঞানৰ ন-ন আৱিষ্কাৰ, দৰ্শন আৰু মনস্তত্ত্বৰ নতুন নতুন ধাৰণাই আধুনিকতাবাদী আন্দোলনৰ পৃষ্ঠভূমি নিৰ্মাণ কৰাত সহায় কৰিলে। বাস্তৱবাদীসকলৰ বৈজ্ঞানিক সঠিকতাৰ ওপৰত অত্যধিক প্ৰভাৱৰ ফলস্বৰূপে শিল্পীৰ স্বকীয় মন, মানসিকতাৰ ওপৰত প্ৰশ্ন আৰম্ভ হ'ল। কিয়নো চকুৰে দেখাটো কলাৰ সত্য নহয়। কলাৰ সত্য লুকাই থাকে শিল্পীজনৰ সৃজনীমূলক কল্পনাৰে দৃষ্ট বস্তুৰ মাজত আৰোপিত উদ্ভাসিত সত্যৰ ওপৰত। এনে পৰিস্থিতিত সৃষ্টি হোৱা সংশয় আৰু প্ৰশ্নই শিল্পীসকলক চিত্ৰশিল্পৰ প্ৰতীতিবাদী আন্দোলন (Impressionist Movement) লৈ আগুৱাই দিলে (James E. Cutting, P-12)।১ পেৰিচৰ বছৰেকীয়া শিল্প প্ৰদৰ্শনী এখনত যিসকল শিল্পীৰ ছবি অৱহেলিত হৈছিল; তেওঁলোকে তেওঁলোকৰ ছবিবোৰ একেলগে প্ৰদৰ্শন কৰে। এই শিল্পীসকলৰ ভিতৰত আছিল আলফ্ৰেড চিচলী (Alfred Sisley, ১৮৩৯-১৮৯৯), এডগাৰ ডেগা (Edger Degas, ১৮৩৪-১৯১৭), ক্ল'ড মনে (Claude Manet, ১৮৩২-১৮৮৩), ৰেনৱা (Renior, ১৮৪১-১৯১৯) প্ৰভৃতি শিল্পীসকল। এওঁলোকে চিত্ৰকলাৰ পূৰ্বৰ ৰীতি-নীতি ত্যাগ কৰি সম্পূৰ্ণ নতুন ধাৰাৰ চিত্ৰ অংকনত মনোনিৱেশ কৰিলে। তেওঁলোকে পোহৰ আৰু ৰঙৰ ওপৰত গুৰুত্ব আৰোপ কৰিছিল। তেওঁলোকৰ মতে শিল্পীৰ চকুত দৃশ্যমান বস্তু বা কোনো মুহূৰ্তৰ অভিজ্ঞতাই পোহৰ আৰু ৰঙৰ জৰিয়তে যিটো ৰূপৰ সাঁচ বা প্ৰতীতি (Impression) তেওঁৰ মনত বহুৱায়; সেই প্ৰতীতি বা সাঁচৰ ছবিহে শিল্পীয়ে অংকন কৰে (James E. Cutting, P-12)।২ সেয়ে চকুৰে দেখা যিকোনো বস্তু বা মুহূৰ্তৰ অবিকৃত ৰূপতকৈ শিল্পীৰ মনত সাঁচ বা চাপ বহা ৰূপটোহে প্ৰকৃত অংকনৰ যোগ্য বুলি প্ৰতিষ্ঠিত হ'ল। ১৮৬০ চনত আৰম্ভ হোৱা এই আন্দোলনৰ প্ৰধান পৃষ্ঠপোষক আছিল ক্ল'ড মনে। প্ৰকৃততে মনেৰ Le Dejeuner Sur I' Herbe (১৮৬৩) নামৰ শিল্পকৰ্মখনৰ নামেৰেই এই শিল্প আন্দোলনটোৰ নামকৰণ কৰা হয়। মনেৰ এই ছবিখন চাই সেই সময়ৰ এজন প্ৰসিদ্ধ শিল্প আলোচক লুই লেৰয়ে (১৮১২-১৮৮৫) ঠাট্টা কৰি Le Charivari নামৰ কাকতখনত 'Impressionists' নামৰ শব্দটো প্ৰথমবাৰৰ বাবে প্ৰয়োগ কৰিছিল। কাকতখনত দুজন সন্দেহবাদী শিল্প দৰ্শকৰ কথোপকথন ছপা হৈছিল (James E. Cutting, P-11)।৩ তাৰ পিছতেই (২৫ এপ্ৰিল, ১৮৭৪) এই শব্দটো জনপ্ৰিয় হৈ পৰিল। এই প্ৰতীতিবাদী ধাৰাৰেই অন্তৰ্গত এটি উপধাৰা হৈছে Stream of Consciousness বা চেতনাস্ৰোত।

চেতনা প্ৰবাহ পদ্ধতিৰ প্ৰধান প্ৰবক্তা আছিল হেনৰী জেইমছ। তেখেতে তেওঁৰ বিভিন্ন উপন্যাসৰ

ভূমিকা আৰু *The Art of Fiction* (১৮৮৪) নামৰ প্ৰবন্ধত এইবুলি উল্লেখ কৰিছিল যে তেওঁ তেওঁৰ কাহিনীৰ এটা কেন্দ্ৰ বা প্ৰধান মাধ্যম বিচাৰি হাবাথুৰি খাইছে (Walter Besant and Henry James)।[৪] এই সমস্যাৰ সমাধানৰ বাবেই তেখেতে উপন্যাসৰ বৰ্ণনাৰীতিৰ পৰিৱৰ্তন আনিবলৈ চেষ্টা কৰিছিল। সেয়ে প্লটৰ ভিতৰৰ কোনো এটা চৰিত্ৰৰ চেতনাৰ মাজেদি ক্ৰিয়াশীলতা আনি বৰ্ণনাৰীতিত সাল-সলনি ঘটাইছিল। এই বৰ্ণনাৰীতিত কাহিনীৰ কথক ঔপন্যাসিক নিজে নহয়। কাহিনীৰ ভিতৰৰ এটা চৰিত্ৰইহে বৰ্ণনা কৰি যায় আৰু সিও প্ৰথম পুৰুষত। এই ৰীতিৰ সাহিত্যত মানুহৰ অন্তঃজগতৰ গভীৰ দ্বন্দ্বৰ প্ৰকাশ ঘটে। সুসংবদ্ধ প্লটৰ বিপৰীতে চৰিত্ৰৰ ক্ৰিয়া-প্ৰতিক্ৰিয়া দেখুওৱাটোৱেই এনে সাহিত্যৰ মূল উদ্দেশ্য। মানুহৰ মনৰ অসংখ্য চিন্তা-ভাবনা আৰু অনুভৱক টুকুৰা-টুকুৰভাৱে ইয়াত সাহিত্যিকে দাঙি ধৰিবলৈ বিচাৰে। তাৰ বাবে প্ৰত্যক্ষ আৰু পৰোক্ষ অন্তৰ্ভাবনা, সৰ্বজ্ঞ বিৱৰণ আৰু স্বগতোক্তিৰ সহায় লোৱা হয়। মানুহৰ ৰহস্যময় মনটোহে এই ৰীতিৰ সাহিত্যত অনুধাৱন কৰিবলৈ যত্ন কৰা হয়। পাশ্চাত্য সাহিত্যৰ এই ৰীতিৰ অসমীয়া সাহিত্যলৈও আগমন ঘটে। গল্প সাহিত্যৰ ক্ষেত্ৰত *আৰাহন যুগ*তেই এই ৰীতিৰ প্ৰয়োগ দেখিবলৈ পোৱা যায় (বৰুৱা, প্ৰহ্লাদ কুমাৰ, পৃ-৪৪৪)[৫]। অৱশ্যে *ৰামধেনু যুগৰ* কেইগৰাকীমান গল্পকাৰৰ গল্পত এই ৰীতিৰ সঘন প্ৰয়োগ দেখিবলৈ পোৱা যায়। *মৰুদ্যান* উপন্যাসৰ জৰিয়তে চেতনা প্ৰবাহ ৰীতিৰ সাৰ্থক প্ৰয়োগ ঘটোৱা ভূপেন্দ্ৰ নাৰায়ণ ভট্টাচাৰ্যৰ প্ৰায়সংখ্যক গল্প-উপন্যাসতেই এই ৰীতিৰ ছিটিকনি দেখিবলৈ পোৱা যায়। চৰিত্ৰৰ অন্তৰ্জগতখন লৈ সদা ব্যস্ত ভট্টাচাৰ্য মূলতঃ এজন চিত্ৰশিল্পী। সেয়ে হয়তো চিত্ৰশিল্পৰ প্ৰতীতিবাদী আন্দোলনৰ সৈতে জড়িত চেতনা প্ৰবাহ ৰীতিৰ স্ফুৰণ তেখেতৰ গল্প-উপন্যাসৰ মাজত জ্ঞাত-অজ্ঞাতভাৱেই ঘটিছে। আলোচ্য গৱেষণা পত্ৰখনত তেখেতৰ সাহিত্যৰ মাজত এই ৰীতিৰ প্ৰয়োগ কিদৰে ঘটিছে তাক কিছু সংখ্যক গল্পৰ জৰিয়তে আলোচনাৰ আওতালৈ অনা হ'ব।

১.০১ বিষয়ৰ পৰিচয় ঃ

চেতনা প্ৰবাহ সাহিত্যৰ এটা ৰীতি বা আংগিক। চেতনা প্ৰবাহৰ ইংৰাজী প্ৰতিশব্দ Stream of Consciousness আচলতে মনস্তত্ত্বৰ পৰা আহৰিত। মনোবৈজ্ঞানিক উইলিয়াম জেইমছে *Principles of psychology* (William James, P-200)[৬] নামৰ গ্ৰন্থখনত প্ৰথমে এই শব্দটোৰ প্ৰয়োগ কৰে। তেখেতে এই শব্দটোৰ জৰিয়তে মানুহৰ অৱচেতন জগতৰ নানা ভাৱনা, স্মৃতি, অনুভৱক নদীৰ নিৰন্তৰ প্ৰবহমান জলধাৰাৰ সৈতে তুলনা কৰিছে। তেখেতৰ মতে মানুহৰ চিন্তা, অনুভূতি এডাল সূত্ৰৰ সৈতে সংলগ্ন হৈ থকাৰ সলনি সুঁতিৰ নিচিনাকৈ অনবৰতে বৈ থাকে। এটা মানসিক অৱস্থা আৰু তাৰ পিছৰ বা আগৰ মানসিক অৱস্থাৰ মাজত চেতনাৰ কোনো পাৰ্থক্য নাথাকে (Humphrey, p.5)।[৭] উইলিয়াম জেইমছৰ মতে Stream of Consciousness হৈছে— *ই জোৰা লগোৱা কিছুমান টুকুৰাও নহয়; ই কেৱল বৈ যায়। প্ৰাকৃতিক উদাহৰণেৰে বৰ্ণাবলৈ হ'লে চেতনাৰ প্ৰবহমানতা জুৰি বা নদীৰ পানীৰ সোঁতৰ দৰে অনবৰতে বৈ থাকে। অৱচেতন জগতৰ এই ভাবনা, স্মৃতি, অনুভৱকেই আমি ভাবনাৰ স্ৰোত, চেতনাৰ স্ৰোত বুলিব পাৰোঁ।*[৮] মানুহৰ মন অতি বিচিত্ৰ। মনোজগতৰ চিন্তা-অনুভূতি প্ৰতিক্ৰিয়াবোৰ স্বয়ংসম্পূৰ্ণ আৰু সুসংবদ্ধ নহয়। কেতিয়াবা পৰস্পৰ সংপৃক্ত, কেতিয়াবা আকৌ সম্বন্ধহীন আনকি বিৰোধীও হ'ব পাৰে। এইদৰে মনৰ ভাৱনাৰাশি জ্ঞাত সত্যৰ পৰা অজ্ঞাত সত্যৰ পথলৈ নদীৰ সোঁতৰ দৰে ধাৱমান। জেইমছে ব্যৱহাৰ কৰা এই শব্দ দুটাই কালক্ৰমত সাহিত্যৰ এক বিশিষ্ট আধুনিক আংগিকৰূপে প্ৰসাৰ লাভ কৰিলে।

চেতনা প্ৰবাহ ৰীতিৰ সতে আন কেতবোৰ কথাও সংযুক্ত হৈ আছে। আধুনিকতাবাদী আন্দোলনৰ অন্যতম ধাৰা প্ৰতীতিবাদ (Impressionism), সময় সম্পৰ্কে বেৰ্গছঁ (Bergson) আৰু উইলিয়াম জেইমছৰ ধাৰণা আৰু মানুহৰ চেতনা সম্পৰ্কে ফ্ৰয়ড, ইয়ুঙৰ নতুন তত্ত্বৰ আধাৰতে সামগ্ৰিকভাৱে চেতনা প্ৰবাহ ৰীতিয়ে সাহিত্যত খোপনি পুতিবলৈ লৈছিল। আধুনিক মনস্তত্ত্বৰ জনক ফ্ৰয়ড আৰু ইয়ুঙে মানুহৰ চেতনাৰ দুতৰপীয়া প্ৰকৃতিৰ কথা ক'লে। ফ্ৰয়ডে দেখুৱাই দিলে যে মানুহৰ প্ৰকৃততে অসংলগ্ন আৰু যুক্তিহীন কাৰ্যাৱলীৰ মাজত নিৰ্জ্ঞান মনৰ গুপ্ত কামনাৰ প্ৰভাৱ লুকাই থাকে। সেইদৰে মানুহৰ

গভীৰ নিদ্ৰাচ্ছন্ন অৱস্থাৰ বাহিৰে চেতন মনত লুকাভাকু খেলা বিৰামহীন দৃশ্যাৱলীৰ মাজতো প্ৰতীক আৰু ৰূপকৰ সহায়েৰে নিৰ্জ্ঞান মনটোৱে ভুমুকিয়াই যায়। ইয়াৰে প্ৰথমটো হ'ল মনোবিশ্লেষণ (psycho analysis) আৰু দ্বিতীয়টো চেতনাবোধ (stream of consciousness) (Humphrey, P-5)৯। চেতনা প্ৰবাহৰ লেখকসকলে সচেতন মনৰ চিন্তা প্ৰবাহৰ মাজেদি মনৰ যুক্তি আৰু শৃংখলা বৰ্জিত গভীৰ অৱস্থালৈ ধাৱমান কৰে। তেওঁলোকে বিশৃংখলতাৰ বুকুতে মানুহৰ স্বৰূপ পৰিষ্কাৰ কৰাৰ প্ৰয়াস কৰে। সেয়ে চেতনা প্ৰবাহৰ লেখকে মূলতঃ দুটা কাম কৰে— *লেখকে পাঠত চেতনা প্ৰবাহক যথাযথভাৱে প্ৰতিফলিত কৰে আৰু পাঠকক কিছু অৰ্থ নিৰ্ণয়ৰ বাবে সম্পূৰ্ণ স্বাধীনতা প্ৰদান কৰে।*১০ আনহাতে ফৰাচী দাৰ্শনিক বেৰ্গছেঁই সময়ৰ নিৰৱচ্ছিন্ন প্ৰবাহৰ কথা কোৱাৰ উপৰি ইয়াক দুটা ভাগত ভাগ কৰিছে। ফ্ৰয়ড, ইয়ুঙ আৰু বেৰ্গছঁৰ তত্ত্বৰ আধাৰত প্ৰতিষ্ঠিত বাবেই চেতনা প্ৰবাহ সাহিত্য দৰাচলতে মনোবৈজ্ঞানিক সাহিত্য। মনোবৈজ্ঞানিক আৰু দাৰ্শনিক মতৰ প্ৰভাৱ পৰা চেতনা প্ৰবাহত এই দুয়োটা দিশৰ মূল পাৰ্থক্য হ'ল— মনোবৈজ্ঞানিকভাৱে ই মানুহৰ আচৰণৰ বিশ্লেষণ কৰে আৰু দাৰ্শনিকভাৱে বস্তুবাদ আৰু অস্তিত্ববাদত গুৰুত্ব দিয়ে (Humphrey, p.8)১১।

সাহিত্যত চেতনা প্ৰবাহৰ সাৰ্থক প্ৰয়োগ ঘটে জেইমছ জয়চৰ *ইউলিছিছ* (১৯২২) উপন্যাসত। অৱশ্যে ইয়াৰ আগতে ১৮৮৮ খ্ৰী.ত এডুৱাৰ্ড ডুজাঁৰ্ড (Edourad Dujardea) নামৰ এজন ফৰাচী লেখকৰ চুটি উপন্যাস *The laurels have been cut*-ত নায়কৰ মনত প্ৰতিফলিত ঘটনা আৰু দৃশ্যৰাজিৰ বৰ্ণনা সংযোগ কৰা হৈছিল। ইয়াৰ পিছত ১৯১৩ ত ফৰাচী ঔপন্যাসিক মাৰ্চেল প্ৰুষ্টৰ *Rememberance of Things past.*-ৰ দুটা খণ্ড প্ৰকাশ হয়। ১৯১৪ চনত প্ৰকাশ হয় ইংলেণ্ডৰ ডৰথি মিলাৰ ৰিচাৰ্ডচনৰ *Pilgrims*-ৰ প্ৰথম খণ্ড *Pointed Roof* আৰু ১৯১৬ চনত প্ৰকাশ হয় আয়াৰলেণ্ডৰ জেইমছ জয়চৰ *A portrait of the Artist as a young man*। এই তিনিওখনেই চেতনা প্ৰবাহ ৰীতিৰ উপন্যাস। ইয়াৰ পিছত হেনৰী জেইমছ, যোচেফ কনৰাড, ডি. এইচ. লৰেন্স, ভাৰ্জিনিয়া উলফ, ফকনাৰ আদি ঔপন্যাসিকসকলে এই নতুন ৰীতিৰ সমৃদ্ধিত অৰিহণা যোগায়। আনহাতে সমালোচনা সাহিত্যত ডৰথি ৰিচাৰ্ডচনৰ *Pilgrims* উপন্যাসখনৰ সমালোচনা প্ৰসংগত মে' ছিন্‌ক্লেয়াৰে চেতনা প্ৰবাহ আংগিকৰ প্ৰয়োগৰ বিষয়ে আঙুলিয়াই দিয়ে (শৰ্মা, ৫৩)।১২ চেতনা প্ৰবাহ ৰীতিৰ সাৰ্থক প্ৰবক্তা ভাৰ্জিনিয়া উলফৰ আটাইতকৈ পৰিপক্ক উপন্যাস হৈছে *Mrs Dalloway* (১৯২৫), *Jacob's Room* (১৯২২) আৰু *To the lighthouse* (১৯২৯)। উলফে চেতনা প্ৰবাহৰ কৌশল সম্পৰ্কত চাৰিটা বিশেষ পদ্ধতিৰ কথা উল্লেখ কৰিছে— *পোনপটীয়া অন্তৰ সংলাপ, আওপকীয়াকৈ ব্যৱহৃত অন্তৰ সংলাপ, সৰ্বজ্ঞ বিৱৰণ আৰু স্বগতোক্তি।*১৩

লেখক হিচাপে ভাৰ্জিনিয়া উলফ আভা গার্ড আন্দোলনৰ আধুনিক লেখকসকলৰ দৰে আর্নল্ড বেনেট, এইছ, জি. ৱেলছ, গলছৱর্থি আদি Edwardian লেখকৰ উপন্যাসৰ আংগিক লৈ খুব অসন্তুষ্ট আছিল। বিংশ শতিকাৰ প্ৰথম দশকলৈকে থকা এই Edwardian সাহিত্যত উলফৰ মতে জীৱন জগতৰ অভিজ্ঞতাৰ বৰ্ণনা আছিল ধূসৰতা আৰু মিথ্যাচাৰেৰে ভৰা। *Modern Fiction* নামৰ তেখেতৰ বিখ্যাত ৰচনাখনত উলফে ইংৰাজী উপন্যাসৰ প্ৰাচীনপন্থী ধাৰাটোক সমালোচনা কৰাৰ লগতে নতুন শৈলী, দৰ্শন আৰু ভাষাৰ প্ৰয়োজনীয়তাৰ কথা আলোচনা কৰিলে। সেয়ে তেখেতে কেম্ব্রিজ বিশ্ববিদ্যালয়ৰ ছাত্ৰসকলৰ সন্মুখত আধুনিক উপন্যাস সম্পৰ্কে দিয়া এটা বক্তৃতাত ১৯১০ চনৰ ডিচেম্বৰ মাহত বা তাৰ আগে-পিছে কোনো সময়ত মানৱ চৰিত্ৰৰ সলনি হৈছিল বুলি উল্লেখ কৰিছিল। এই বক্তব্যৰ সত্যতা অনুধাৱন কৰিলে দেখা যায় যে ১৯১০ চনৰ ডিচেম্বৰ মাহতে লণ্ডন মহানগৰীত উত্তৰ-প্ৰতীতিবাদী চিত্ৰৰ এখন প্ৰদৰ্শনী পতা হৈছিল। তাত পল চেজান, ভান গগ, পাবলো পিকাচো, মাতিচ প্ৰভৃতি বৰেণ্য শিল্পীৰ ছবি প্ৰদৰ্শিত হৈছিল। ইতিমধ্যে ১৯০৯ চনত এণ্টন চেখভৰ বিখ্যাত গল্পবোৰ অনূদিত হয়। আনহাতে ফ্ৰয়ড আৰু ইয়ুঙেও তেওঁলোকৰ মনঃসমীক্ষণ তত্ত্বৰ ব্যাখ্যা কৰে। ১৯১২ চনত প্ৰকাশিত হয় কনষ্টান্স গাৰনেটৰ দ্বাৰা অনূদিত ডষ্টয়েভস্কিৰ উপন্যাস। এনে

এক সময়তে মাথোন চাৰিটা বছৰৰ ভিন্নতাত ১৯১৩, ১৯১৪, ১৯১৬ ত মার্চেল প্রুষ্ট, ডৰথি ৰিচার্ডচন আৰু জেইমচ জয়চ এই তিনিগৰাকী ঔপন্যাসিকে তেওঁলোকৰ উপন্যাসৰ জৰিয়তে বিশ্বত আলোড়ন সৃষ্টি কৰিলে।

১.০২ অসমীয়া গল্প সাহিত্যত চেতনা প্রবাহ ঃ

অসমীয়া চুটিগল্পত চেতনা প্রবাহৰ প্রয়োগ ৰামধেনু যুগত হোৱা বুলি কোৱা হয় যদিও এই ভাবধাৰাৰ সার্থক প্রয়োগ আৱাহন যুগৰ চুটিগল্পতেই আৰম্ভ হৈছিল। এই যুগৰ *হলীৰাম ডেকাৰ গল্পতে পোন প্রথম চেতনাস্রোত ভাবধাৰাৰ সার্থক প্রয়োগ হৈছিল। হলীৰাম ডেকাৰ ভ্রষ্টলিপি নামৰ গল্পটোৰেই ইয়াৰ জলন্ত উদাহৰণ।*[১৪] অৱশ্যে *অসমীয়া চুটিগল্পত চেতনাস্রোত ভাবধাৰাক সৌৰভ কুমাৰ চলিহা আৰু নগেন শইকীয়াই অধিক সফলতাৰে প্রয়োগ কৰা দেখা যায়।*[১৫] সৌৰভ কুমাৰ চলিহাৰ *দূৰবীণ, দুপৰীয়া, অশান্ত ইলেক্ট্রন, বীণা কুটীৰ, আচ্ছন্ন, আৱাজ, ভ্রমণ বিৰতি, ৰাতিৰ ৰে'ল* আদি গল্পত চেতনা প্রবাহ ৰীতিৰ বিভিন্ন বৈশিষ্ট্য প্রতিফলিত হৈছে। সেইদৰে নগেন শইকীয়াৰ চেতনা প্রবাহ ৰীতি পৰিস্ফুট কেইটামান গল্প হ'ল— *তাৰুণ্যৰ আত্মহত্যা, তললৈ আৰু তললৈ, এখন আচৰিত আয়নাৰ সন্মুখত, উত্তাপ আৰু বিষাদ, নির্বিশেষ সময়, চহৰৰ মন, বিমূঢ় বিমূঢ়, বিভ্রান্ত সংলাপ, আন্ধাৰত নিজৰ মুখ, সি তাৰ সন্ধানত, প্রাতিভাসিক, সূর্যৰ উত্তাপ এতিয়া হৃদয়ত* আদি। অৱশ্যে *অন্তর্মুখী আত্মকথনৰ প্রাধান্য থাকিলেও সি সামগ্রিক অর্থত চেতনাপ্রবাহ ৰীতি নহয়। সেইফালৰপৰা এই দুজন লেখকো পূর্ণাংগ ৰূপত চেতনাপ্রবাহৰ অনুগামী লেখক নহয়।* ক'ব পাৰি তেওঁলোকৰ গল্পত চেতনাপ্রবাহ ৰীতিৰ ছিটিকনি বিভিন্ন বৈশিষ্ট্যৰে প্রতিফলিত হৈছে। এওঁলোক দুজনৰ বাহিৰেও আন কেইজনমান গল্পকাৰৰ গল্পতো চেতনা প্রবাহৰ ৰীতি কোনো কোনো ক্ষেত্রত পৰিস্ফুট হৈছে। তেওঁলোকৰ ভিতৰত অপূর্ব শর্মা, গোৱিন্দ প্রসাদ শর্মা, ইদ্রিছ আলী, কুমুদ গোস্বামী, মনোজ কুমাৰ গোস্বামী, কুল শইকীয়া, জ্যোতিষ শিকদাৰ, মৌচুমী কন্দলী আদি। আমাৰ আলোচ্য গল্পকাৰ ভূপেন্দ্র নাৰায়ণ ভট্টাচার্যৰ উপন্যাস *মৰুদ্যানখনতেই* চেতনা প্রবাহৰ সার্থক প্রয়োগ ঘটিছে বুলি গোৱিন্দ প্রসাদ শর্মাই তেখেতৰ সমালোচনা গ্রন্থ *উপন্যাস আৰু অসমীয়া উপন্যাসত* বিস্তাৰিতভাৱে আলোচনা কৰিছে। প্রথম বাৰৰ বাবে অসমীয়া উপন্যাসত চেতনাপ্রবাহৰ সার্থক প্রয়োগ ঘটোৱা ভট্টাচার্য মূলত এজন চিত্রশিল্পী। যিহেতু চিত্রশিল্পৰ প্রতীতিবাদী আন্দোলনৰ সৈতে চেতনা প্রবাহ ৰীতিৰ সম্পর্ক ওতপ্রোত; সেয়ে স্বাভাৱিকভাৱেই ভট্টাচার্যৰ সাহিত্যৰাজিৰ মাজলৈ এই ৰীতিৰ বিভিন্ন বৈশিষ্ট্য ছেগা-চোৰোকাকৈ হ'লেও প্রতিফলিত হৈছে। সমালোচক অৰিন্দম বৰকটকীয়ে ভট্টাচার্যৰ সাহিত্যিক বৈশিষ্ট্য সম্পর্কত লিখিছে— *এইজন কথকৰ ৰচনাত পটুৰৈ প্রথম পৰিচয় ঘটে চৰিত্রৰ সৈতে, ঘটনাৰ সৈতে নহয়। অনুভৱ, কথোপকথনৰ দৰে পাৰস্পৰিক যোগাযোগৰ ওপৰত ভিত্তি কৰি গঢ় লৈ উঠা কাহিনীসূত্রৰ ৰচয়িতা এইজন লেখকে দৰাচলতে পটুৰৈৰ সন্মুখত কোনো কাহিনী কৈ নাথাকে ; ৰৰঞ্চ পটুৰৈক চৰিত্রসমূহৰ উপলব্ধি অনুধাৱন কৰি বাস্তৰক নিজস্ব ধ্যান-ধাৰণাৰে আৰিষ্কাৰৰ সুযোগ দিয়ে।*[১৬] এই কথাষাৰৰ দ্বাৰা এইটো প্রতীয়মান হয় যে, ভট্টাচার্যৰ গল্প মূলত চৰিত্রৰ কার্যকলাপকেন্দ্রিক। ফলস্বৰূপে চৰিত্রৰ অন্তর্জগত স্বাভাৱিকভাৱেই গল্পসমূহত উপস্থিত হোৱাটো নিতান্তই সম্ভাৱনীয়। সেয়ে তেখেতৰ গল্পৰাজিত চেতনা প্রবাহৰ কোনবোৰ বৈশিষ্ট্য প্রতিফলিত হৈছে তাক বিশ্লেষণ কৰি চোৱাটো যুক্তিসংগত। অৱশ্যে *মৰুদ্যানক* চেতনা প্রবাহৰ সার্থক প্রয়োগ ঘটা অসমীয়া উপন্যাস বুলি সমালোচকসকলে মন্তব্য কৰাৰ পিছত তেখেতে নির্দ্বিধাই এইটো স্বীকাৰ কৰিছিল যে— *লিখি থাকোঁতে মই একোৰে প্রতি সচেতন নাছিলোঁ। আংগিকৰ কথা বাদেই।*[১৭] তেখেতৰ এই মন্তব্যৰ পৰাই অনুমান কৰিব পাৰি তেখেত বিভিন্ন তত্ত্ব-মতাদর্শৰ প্রয়োগ সম্পর্কে সম্পূর্ণ মনোযোগী নাছিল।

১.০৩ গল্পকাৰ ভূপেন্দ্র নাৰায়ণ ভট্টাচার্য ঃ

আশীৰ দশকত সৃষ্টিশীল সাহিত্য কর্মৰে অসমীয়া সাহিত্যত খোজ পেলোৱা ভূপেন্দ্র নাৰায়ণ ভট্টাচার্যই নতুন আংগিক আৰু কলা-কৌশলৰ সম্পৰীক্ষাৰে অসমীয়া সাহিত্যক বৈচিত্র্য দান কৰিছে। কুৰি শতিকাৰ আশীৰ দশকৰ পৰা একবিংশ শতিকাৰ বছৰ কেইটাতো গল্পকাৰগৰাকীৰ কাপেৰে গল্প নিঃসৃত হৈ আছে। মানুহৰ প্রাত্যাহিক জীৱনৰ যথাযথ চিত্রায়ণত গুৰুত্ব আৰোপ

কৰি গতানুগতিক কাহিনী কোৱাৰ পৰম্পৰাগত ৰীতি পৰিহাৰ কৰি নতুন বিন্যাস, অভিব্যঞ্জনাৰে গল্প এটাক কলাত্মক পর্যায়লৈ উন্নীত কৰাসকলৰ ভিতৰত ভট্টাচার্য অন্যতম। নিজস্ব এক শৈলীৰে গল্পৰ আংগিক নির্মাণ কৰা গল্পকাৰজনে সাধাৰণ কথাবস্তুক সূক্ষ্ম দৃষ্টিৰে অৱলোকন কৰি চুটিগল্পৰ কাৰিকৰী কৌশলেৰে নিটোল ৰূপ দিয়াৰ প্রয়াস কৰিছে। গল্পৰ কাহিনীবোৰৰো কোনো নিজস্ব বিচিত্রতা নাই, কাহিনীক বিচিত্রতা দিয়ে অভিজ্ঞতা আৰু সূক্ষ্ম পর্যবেক্ষণেহে। সেয়ে চাক্ষুষ অভিজ্ঞতা আৰু আত্মোপলব্ধি তেখেতৰ সাহিত্যৰ অন্যতম এক বৈশিষ্ট্য। চাক্ষুষ অভিজ্ঞতাৰ বাবেই গল্পবোৰৰ মাজত তেখেতক এজন সমাজ-সচেতন পর্যবেক্ষক হিচাপে বিচাৰি পোৱা যায়। চৰিত্রৰ চেতনা প্রবাহৰ ভাষ্যকাৰ বুলি ক'ব পৰা এইগৰাকী গল্পকাৰে আধুনিক জীনৰ জটিলতা, মনৰ বিশৃংখল ক্রিয়া-কাণ্ড, নৈতিক-অনৈতিক চিন্তাৰ সংঘর্ষ, নষ্টালজিয়া, আশা ভংগুৰতা আদিক চৰিত্রৰ বিবেকৰ প্রবাহৰ জৰিয়তে গল্পৰ বিষয়বস্তু কৰিছে। ফলত চৰিত্রৰ বাহ্যিক জীৱনৰ লগতে অন্তর্জীৱনেও গল্পবোৰৰ মাজত ভুমুকি মাৰিছে। সেয়ে তেখেতৰ গল্পৰ চৰিত্র সামাজিক প্রাণীতকৈ প্রথমে এক ব্যক্তিসত্তা হিচাপেহে প্রতিষ্ঠিত। চৰিত্রৰ বিবেকৰ প্রবাহ ভট্টাচার্যৰ সাহিত্যৰাজিৰ অন্যতম এক বৈশিষ্ট্য। এই বৈশিষ্ট্যৰ বাবেই তেখেতৰ সৃষ্টিশীল সাহিত্যৰ ভাব-ভংগী আৰু আংগিকলৈও এক নির্দিষ্ট শৈলীৰ আগমন ঘটিল। সেয়ে সার্থকভাৱেই অসমীয়া সৃষ্টিশীল সাহিত্যৰ ক্ষেত্রখনত তেখেতে দুটামান উপাদানৰ আগমন ঘটোৱা বুলি অৰিন্দম বৰকটকীয়ে উল্লেখ কৰিছে— *তেনে দুটা উপাদান হ'ল মনস্তাত্ত্বিক সংবেদনশীলতা আৰু আধুনিকতাৰ বার্তাবাহী আংগিকৰ প্রয়োগত সফলতা।*[১৮] অসমীয়া সাহিত্যলৈ আগবঢ়োৱা তেখেতৰ চুটিগল্প সংকলনকেইখন হ'ল— *কোৰাছ* (১৯৮০), *দালাল* (১৯৮৬), *ঘৰাপাক* (১৯৯২), *গৰম বতাহ* (ব্যঙ্গগল্প, ১৯৯৭), *আধুনিকোত্তৰ আঠাইশটা চুটিগল্প* (২০০৭), *কফি হাউছত কেইঘণ্টামান* (২০০৭), *জীৱনৰ গদ্য কবিতা* (২০০৭), *পাণবজাৰত এটা বাঘ* (২০০৮), *গুৱাহাটীয়া গল্পগুচ্ছ* (২০১৪)।

১.০৪ অধ্যয়নৰ উদ্দেশ্য ঃ

ভূপেন্দ্র নাৰায়ণ ভট্টাচার্যৰ গল্পবোৰত আংগিকৰ স্বকীয় কৌশল, মনোজগতকেন্দ্রিক চৰিত্র বৈচিত্র্যই বিশেষ আয়তন প্রদান কৰিছে। চেতনা প্রবাহৰ উপস্থাপন ৰীতি আৰু কাহিনী বিন্যাসৰ দক্ষতাই গল্পবোৰক আধুনিক কৰি তুলিছে। কাহিনী আৰু চৰিত্র নির্মাণৰ বিশেষ প্রচেষ্টা গল্পবোৰত নাথাকিলেও পৰিস্থিতি আৰু সময়ে আনি দিয়া দোলনৰ মাজত কাহিনীৰ যোগসূত্র পাঠকে নিজা ধৰণে বিচাৰি ল'ব পাৰে। গল্পৰ চৰিত্রবোৰ পার্থিৱ জগতৰ প্রাত্যাহিক পাৰিপার্শ্বিকৰ ঊর্ধ্বত আন এক অপার্থিৱ অনিশ্চিত জিজ্ঞাসাৰ সন্ধানত পৰিভ্রমণ কৰি থকা ধৰণৰ। চৰিত্রবোৰত ব্যক্তিগত কাৰকৰ উপৰিও নিঃসংগতা, বিচ্ছিন্নতাবোধ, সামাজিক-ৰাজনৈতিক-অর্থনৈতিক প্রভাৱশালীতাৰ অনুৰণন গল্পবোৰত আছে। আলোচ্য গৱেষণা পত্রখনত ভট্টাচার্যৰ ২০১৪ চনত প্রকাশিত গল্প সংকলনসমূহৰ পৰা তেখেতৰ গল্পবোৰত চেতনা প্রবাহৰ ৰীতি কেনেদৰে প্রতিফলিত হৈছে তাৰ আলোচনা কেইটামান দিশক উদ্দেশ্যৰূপে লৈ কৰা হ'ব।

১। ক্রমবিহীন ঘটনা-উপঘটনাসমূহ চৰিত্রৰ বিবেকৰ প্রবাহৰ জৰিয়তে গল্পত কিদৰে প্রতিফলিত হৈছে।
২। সময়ৰ একৰৈখিক গতিৰ অৱসান গল্পবোৰত কিদৰে পৰিস্ফুট।
৩। গল্পবোৰত প্রয়োগ হোৱা অন্তৰ সংলাপ।
৪। চৰিত্রৰ অন্তর্ভাবনা, সর্বজ্ঞ বিৱৰণ আৰু স্বগতোক্তিৰ প্রয়োগ।

১.০৫ অধ্যয়নৰ পৰিসৰ, পদ্ধতি আৰু তথ্য আহৰণৰ উৎস ঃ

আলোচ্য গৱেষণা-পত্রখনত ভূপেন্দ্র নাৰায়ণ ভট্টাচার্যৰ গল্পৰ মাজেৰে কিদৰে চেতনা প্রবাহৰ কোনবোৰ বৈশিষ্ট্য প্রতিফলিত হৈছে তাক বিশ্লেষণ কৰা হ'ব। গৱেষণা-পত্রখনত বর্ণনাত্মক আৰু বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতিৰ সহায় লোৱা হৈছে। সেয়া হ'লেও বিষয়ক যিহেতু সূক্ষ্মভাৱে বিচাৰ-বিশ্লেষণ কৰা এই অধ্যয়নৰ মূল উদ্দেশ্য, গতিকে ইয়াৰ মূল পদ্ধতি বিশ্লেষণাত্মক। পত্রখন প্রস্তুত কৰোঁতে মুখ্য উৎসৰূপে ভূপেন্দ্র নাৰায়ণ ভট্টাচার্যৰ গল্প আৰু বিষয়ৰ লগত সংগতি থকাকৈ বিভিন্ন গ্রন্থ, আলোচনীৰ সহায় লোৱা হৈছে।

২.০০ প্রস্তাৱিত বিষয়ৰ পর্যালোচনা ঃ

২.০১ ভট্টাচার্যৰ গল্পত চেতনা প্রবাহৰ ৰীতি ঃ

ভূপেন্দ্র নাৰায়ণ ভট্টাচার্যৰ বেছিভাগ গল্পতে কাহিনীৰ আদি-মধ্য-অন্ত্যবিশিষ্ট ধাৰাবাহিকতা নাই। তাৰ সলনি আছে আপাতদৃষ্টিত কার্যকৰণবিহীন পাৰস্পৰিক শৃংখলাহীন কিছুমান পৰিঘটনাৰ খণ্ডচিত্র। অৱশ্যে গল্পবোৰ পাৰস্পৰিক শৃংখলাহীন যদিও তাৰ মাজত অন্তঃসলিলাৰ দৰে লেখকৰ সমাজ-সচেতন মনটো প্রবাহিত হৈ আছে। ইয়েই গল্পবোৰক বাস্তৱতাৰ পৰা দূৰৈত অৱস্থান কৰাত বাধা আৰোপ কৰিছে। আধুনিকতাৰ সম্প্রসাৰণৰ লগতে নগৰীকৰণ আৰু যান্ত্রিকতাৰ ভূমিকাই গল্পখিনিত বিশিষ্ট আয়তন দিছে। বিশেষকৈ নিম্নবিত্ত আৰু মধ্যবিত্তীয় জীৱন আৰু সামাজিক ব্যৱস্থাৰ ৰুটিনত আবদ্ধ জীৱন আৰু সমস্যাৰে জর্জৰিত চৰিত্রবোৰৰ নিঃসংগতা, বিচ্ছিন্নতাবোধৰ অনুৰণন গল্পবোৰত আছে। কথক কাহিনীৰ লগত পাঠকৰ স্বাধীন চিন্তাৰ সংযোগৰ সুবিধাই গল্পবোৰৰ মাজত কাহিনীৰ উন্মুক্ত পৰিসীমা প্রকাশ কৰিছে। বিচিত্র মনোজগতৰ চেতন-অৱচেতন মনৰ সৈতে কৰা বিশ্লেষণে গল্পবোৰক সুকীয়া স্বাদ প্রদান কৰিছে। সময়ৰ ধাৰাবাহিকতাৰ বর্ণনা গল্পবিলাকত নাই।

প্রথমেই আমি চাব লাগিব গল্পবোৰত stream of consciousness কিদৰে ৰক্ষিত হৈছে। Consciousness অতি সহজে এটা সুঁতিৰ পৰা আন এটা সুঁতিলৈ প্রবাহিত হয়। অন্তর্জগতত ব্যক্তিয়ে নিজৰ প্রয়োজন সাপেক্ষে নিজৰ সময় নির্ধাৰণ কৰি ল'ব পাৰে। কিয়নো মানসিক সংযোগ কোনো Calender continuityৰ ওপৰত নির্ভৰ নকৰে। এই বৈশিষ্ট্য ফুটাই তুলিবলৈ চেতনা প্রবাহৰ লেখকে দুটা কাম কৰে। প্রথমে তেওঁ চৰিত্রৰ চেতনা প্রবাহ সাহিত্য পাঠত প্রতিফলিত কৰে। দ্বিতীয়তে তেওঁ পাঠকৰ বাবে অর্থ নির্ণয় কৰি দিয়ে (Humphrey, p.55)১৯। ভট্টাচার্যৰ প্রায়সংখ্যক গল্পলৈ বিশ্লেষণ কৰিলেই ধৰা পৰে গল্পবোৰত প্রতিফলিত চেতনা। *ব্রহ্মপুত্রৰ বুকুত সূর্যাস্ত* সংকলনখনৰ *ছাতি* নামৰ গল্পটিত স্বৰাজৰ পৰৱর্তী শিক্ষা ব্যৱস্থাই গঢ় দিয়া নিয়োগহীন যুৱ সমাজৰ মানসিকতাক প্রতিফলিত কৰিছে। গল্পৰ কেন্দ্রীয় চৰিত্র শশাংকৰ মানসিক জগতত একে সময়তে প্রবাহিত হৈছে ভিন্ন প্রশ্ন। উচ্চশিক্ষা গ্রহণ কৰিও দেউতাকৰ আর্জনৰ ওপৰত নির্ভৰশীল হৈ থাকিব লগা শশাংকৰ নিজকে তেজ শোহা শোষণকাৰী যেন ধাৰণা হৈছে যদিও একেসময়তে যিকোনো কাম কৰিবৰ বাবে বাধাস্বৰূপে থিয় হৈছে বিশ্ববিদ্যালয়ৰ ডিগ্রীটো। কিন্তু শশাংকৰ বাস্তৱত থাকি কৰা এই চেতনা প্রবাহ কিন্তু অসংলগ্ন নহয়। নাটকীয় একালাপৰ জৰিয়তে আৰম্ভ হোৱা *গুৱাহাটীয়া গল্পগুচ্ছ* সংকলনখনৰ *কফি একাপ খাবা নেকি?* গল্পটোত গ্রন্থমেলাত কেন্দ্রীয় চৰিত্রই দেখা পোৱা এগৰাকী কিতাপ পঢ়ি থকা যুৱতীক কেন্দ্র কৰি তেওঁৰ মনলৈ ছোৱালীজনী সম্পর্কে বিভিন্ন চিন্তা অগা-ডেৱা কৰিছে। ছোৱালীজনীৰ নামটো কি হ'ব পাৰে তাক লৈয়েই কথক চৰিত্রৰ মনলৈ বিভিন্ন ভাব প্রবাহিত হৈছে। *বুদ্ধদেবৰ প্রত্যাৱর্তন* গল্পটো এজন শিল্পীৰ অর্ন্তদ্বন্দ্বৰ উপস্থাপন। সেয়ে বুদ্ধদেৱৰ জীৱন সম্পর্কীয় দৃষ্টিভংগীও আন সাধাৰণ মানুহতকৈ পৃথক। তেওঁ বাহ্যিক পৃথিৱীৰ জাক-জমকতাত আৱদ্ধ হৈ জীৱনটো পাৰ কৰিব নোখোজে। শিল্প আৰু সত্য এই দুয়োটাক ত্যাগ কৰি বুদ্ধদেৱৰ জীৱন অনর্থক আৰু অসাৰ হোৱা বুদ্ধদেৱৰ চিন্তা-জগতত অজস্র ভাবৰ হেন্দোলনি। কিন্তু বুদ্ধদেৱ পার্থিৱ জীৱন সম্পর্কে উদাসীন যদিও মানসিক সুখ-সন্ধানত যেন চৰিত্রটো অহৰহ ব্রতী— *"জীৱনটো এটা সুন্দৰ অভিজ্ঞতা হ'ব পাৰে যদিহে তুমি তোমাৰ জীৱনটো যেনেকৈ আহে তেনেকৈ লোৱা। আশাই পৰম দুখ, নিৰাশাই পৰম সুখ... মই এতিয়া এই চিন্তাৰেই চলি যাম... বিদেশত থাকি অত্যাধুনিক কেইবাখনো গাড়ীৰ ইঞ্জিন আৱিষ্কাৰ কৰি স্বআর্জিত সকলো টকা-পইচা আনে যেতিয়া কাঢ়ি নিলে তাৰ পাছত নতুন যন্ত্রপাতি সাজি পৃথিৱীত চমক লগোৱাৰ কিবা অর্থ আছে? আজিৰ পৃথিৱী অশান্তি-অসূয়াৰ দ্বাৰা ৰোগাক্রান্ত হোৱাৰ বাবে মোৰ দৰে সৃষ্টিশীল মানুহৰ এই দুৰৱস্থা। মটৰগাড়ীৰ নতুন মেচিন আৱিষ্কাৰ কৰাতকৈও সকলো মানুহৰ বাবেই প্রয়োজনীয় যিটো অভাৱ— মানে সুখ শান্তিৰ আৱিষ্কাৰৰ সন্ধানতেই মই এনেকৈ ঘূৰি ফুৰিছোঁ।"* (গুৱাহাটীয়া গল্পগুচ্ছ, পৃ. ৫৯-৬০)। চৰিত্রটোৰ মনৰ এই ভাবপ্রবাহত কোনো অসংগতি বা পৰস্পৰ বিযুক্ত প্রবাহ নাই। *ব্রহ্মপুত্র মোৰ বন্ধু* গল্পটোত কথক চৰিত্র সুজাতাৰ জৰিয়তে বিশ্ববিদ্যালয়ত অধ্যয়নৰত কেইগৰাকীমান ছাত্রীৰ

কথোপকথনৰ যোগে আধুনিক সমাজৰ নগ্ন মানসিকতাক উদঙাই দেখুৱাত গল্পকাৰ সার্থক হৈছে। সুজাতাৰ প্রেমিক বন্ধুক কেন্দ্র কৰিও ছাত্রীকেইগৰাকীৰ পৰম উৎসুকতা। ব্রহ্মপুত্রৰ প্রতি সুজাতাৰ মনৰ ভাৱ এনেকুৱা— *মই যান্ত্রিকতাৰ পৰা মুক্তি বিচাৰিহে ইয়ালৈ আহোঁ। আহি ব্রহ্মপুত্রৰ বুকুৰ ঢৌবোৰ পর্যবেক্ষণ কৰোঁ। আৰু এই ঢৌবোৰ চাই চাই মই মোৰ জীৱনৰ অর্থ বিচাৰোঁ।* (পাণবজাৰত এটা বাঘ, পৃ.১০৪) *পদাতিক* গল্পৰ কেন্দ্রীয় চৰিত্র স্নাতকোত্তৰ উত্তীর্ণ বকুল মানসিক অস্থিৰতাত ভুগিছে। কিয়নো সি দুবছৰে পেৰালাইছিছ হৈ দেউতাকৰ ওপৰত নির্ভৰশীল হৈ আছে। বকুলৰ মানসিক অস্থিৰতাৰ চিত্রখন গল্পৰ আৰম্ভণিতে এনেদৰে প্রতিফলিত হৈছে— *মনলৈ এটা কল্পনা আহিছে। এটা ধাৱমান গতিৰ ঘোঁৰা যি তাৰ প্রচণ্ড গতিৰে মোৰ মাজেৰে গৈ আছে। এটা সময়ত দেখিছোঁ ঘোঁৰাটোৱে তাৰ স্বকীয় ৰূপ সলাই মোৰ মনৰ লগত কিবাকৈ যেন মিলি গৈছে। সেই মিশ্রিত মনটো ইফালেও দৌৰিছে, সময়ত সিফালেও দৌৰিছে। কোনো স্থিৰতাই নাই। বৰ অস্থিৰ এয়া মোৰ মনৰ মাজত ঘোঁৰাৰ ছবি ক্রমাৎ প্রকট হৈ আহিছে। লেকামবিহীন ঘোঁৰাটোৰ ডিঙিত লেকাম লগোৱা যায় কেনেকৈ?* (গুৱাহাটীয়া গল্পগুচ্ছ, পৃ.১০৫) তথাপি বকুল বাস্তৱ বিমুখ চৰিত্র নহয়। *কোনো মানুহ মৰা নাই , নমৰেও* গল্পটোত কেন্দ্রীয় চৰিত্রৰ মৃত্যুভীতিয়ে চৰিত্রটোৰ জীৱনলৈ কঢ়িয়াই আনিছে নিঃসংগতা । নিঃসংগতাৰ পৰা হাত সাৰিবলৈ অতীতৰ স্মৃতিচাৰণক আশ্রয় হিচাপে গ্রহণ কৰিছে । তথাপি চৰিত্রটোৱে পৃথিৰীৰ পৰা নিজৰ অৱশেষ , অস্তিত্ব নোহোৱা হৈ যোৱাৰ কথাটো সহজভাৱে গ্রহণ কৰিবলৈ লোৱা সংকল্প চেতনাৰ জৰিয়তেই চৰিত্রটোৰ মনত উদ্ভৱ হৈছে ---- *সকলো সময়ৰ বাবেই অস্তিত্বহীন হৈ পৰিব । কেইদিনমান হয়তো তাৰ স্মৃতি সুঁৰৰি কোনোবাই কান্দিব । তথাপিও স্মৃতি থাকি যাব , কিন্তু কিমান দিন? যি সময়ত হয়তো তাৰ জীৱহীন দেহটোক শ্মশানৰ চিতাৰ জুইয়ে আগুৰি ধৰিব তেতিয়া তাৰ প্রিয় কাফেখনৰ প্রিয়তম চিটটোত বহি অইন কোনোবা এজনে নির্বিকাৰভাৱে কফি খাই খাই সন্ধ্যা বাতৰি পঢ়িব অথবা কাইলৈ ক'ৰবাত আউটিং কৰিব পাৰি নেকি বুলি বন্ধুমহলত আলোচনা কৰিব ...* (আধুনিকোত্তৰ আঠাইছটা চুটিগল্প , পৃ . ১৩) । সেইদৰে *এদিন দীঘলী পুখুৰীৰ পাৰত* গল্পটোত --- *এইবোৰ একান্তই বাস্তৱ । তাক লৈ মোৰ কোনো খেদ নাই । মাত্র মই আজি অনুতপ্ত মোৰ নিজৰ কর্ম লৈ । ইমান দিনে মই বাৰু কি কৰিলোঁ ? এসোপামান সম্পত্তি আর্জিলোঁ । গৰুৱে দকচি খোৱাৰ দৰে সেইসোপা ওৰে জীৱন খালো আৰু খুৱালো । যিবোৰ সম্পত্তি লৈ এতিয়া মোৰ অকর্মণ্য ল'ৰা - ছোৱালীবোৰৰ মাজত টনা - আজোৰা চলিছে । এইবোৰে জানো মোক কিবা আনন্দ দিলে ?* (ব্রহ্মপুত্রৰ বুকুত সূর্যাস্ত , পৃ . ১৫১)। দেখা যায় গল্পবোৰৰ কেন্দ্রীয় ভাব সমাজ বিচ্ছিন্ন নহয় বাবে গল্পৰ কাহিনী আৰু চৰিত্রৰ মাজত অসংলগ্ন, শৃংখলাবিহীন ক্রম ৰক্ষা পৰা নাই। যিটো চেতনা প্রবাহৰ মূল বৈশিষ্ট্য। সেইপিনৰ পৰা গল্পবোৰত সার্থকভাৱে চেতনা প্রবাহ ৰীতি পৰিলক্ষিত হোৱা নাই। কেৱল চৰিত্রৰ ভাবৰ সোঁতবোৰত ছিটিকনিহে পৰিছে বুলি ক'ব পাৰি।

ভট্টাচার্যৰ প্রায়ভাগ গল্পতে অন্তৰ সংলাপৰ প্রয়োগ হৈছে আৰু এই অন্তৰ সংলাপৰ প্রয়োগৰ দ্বাৰা মানুহৰ মনৰ মাজত চলি থকা বিচ্ছিন্ন ভাৱ ধ্বনিত হোৱা শুনা যায়। বহু সময়ত অন্তৰ সংলাপৰ প্রয়োগৰ দ্বাৰা মানুহৰ অভ্যন্তৰ জগতৰ গভীৰতৰ স্থানত প্রৱেশ কৰি মানুহৰ জীৱনৰ সূক্ষ্ম সত্য কিছুমানকো উদ্‌ঘাটন কৰিবলৈ যত্ন কৰা হৈছে। অন্তৰ সংলাপ এনে এক কৌশল যিটো চৰিত্রৰ মানসিক অৱস্থাক বুজাবলৈ প্রয়োগ কৰা হয়। Edward Dujardian-এ পোন প্রথমে interior monologue তেখেতৰ উপন্যাস *Les Lauriors Sont Coupes* (১৮৮৭)ত প্রয়োগ কৰে। লগতে এই কৌশলৰ সংজ্ঞা সম্পর্কে কয়— *এই পদ্ধতিত লেখকৰ ব্যাখ্যা বা বিৱৰণ অবিহনেই অন্তৰ সংলাপে পাঠকক পোনপটীয়াকৈ চৰিত্রৰ অন্তর্জীৱনৰ সৈতে পৰিচয় কৰাই দিয়ে।*[২০] মহেন্দ্র বৰাই তেখেতৰ সমালোচনা গ্রন্থ *সাহিত্য উপক্রমণিকাত* কৈছে— *অভিব্যক্তি বুলিবলৈ আছে, চেতন মনৰ অর্ধস্ফুট উক্তিৰ লগত অৱচেতন মনৰ পৰা পানীৰ তলৰ বুৰবুৰণিৰ দৰে উঠি অহা এমুঠি অসংলগ্ন স্বগতোক্তিৰ সংযোজন।*[২১] Interior monologue-ৰ দুটা ধাৰা আছে Direct interior monologue আৰু Indirect interior monologue. Direct interior

monologue হৈছে যিটো ধাৰাত লেখক/পাঠকৰ অৱস্থিতিক সম্পূর্ণৰূপে নসাৎ কৰা হয়। প্ৰথম পুৰুষৰ দৃষ্টিৰে ইয়াক বৰ্ণনা কৰা হয়। জেমচ জয়চৰ *ইউলিছিছ* এই ধাৰাত ৰচিত। আনহাতে indirect interior monologue হৈছে য'ত লেখকজন সৰ্বদিশতে নীৰৱে থাকি ভূমিকা গ্ৰহণ কৰে। লেখকজন কোনো চৰিত্ৰৰ Consciousness-ৰ সৈতে পোনপটীয়াকৈ জড়িত হৈ থাকি চৰিত্ৰৰ বৰ্ণনা, চিন্তাৰ লগতে কোনো মুহূর্তত চৰিত্ৰক নির্দেশনাও দিয়ে। ভার্জিনিয়া উলফৰ মিছেছ ডেলৱেত ইয়াৰ প্ৰয়োগ কৰা হৈছে (Humphrey, p.24)।২২ *ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ বুকুত সূৰ্যাস্ত* গল্পটোত Direct interior monologue-ৰ প্ৰয়োগ হৈছে এনেদৰে— সূৰ্যাস্তৰ সময়ত সদায় নিজকে অকলশৰীয়া যেন অনুভৱ হয়। আজিও তেনে অনুভৱ হ'ল। অন্ধকাৰৰ মাজত ভাবোঁ— *মোৰ জীৱনৰ পথ প্ৰদৰ্শক কোন? মা-দেউতা? ওহোঁ নহয়। জৈৱিকভাৱে তেওঁলোক মোৰ অভিভাৱক হ'ব পাৰে, কিন্তু জীৱনৰ অভিভাৱক বা পথ প্ৰদৰ্শক নহয়। অন্ধকাৰৰ মাজত পথ প্ৰদৰ্শকক খেপিয়াওঁ, কিন্তু ওচৰত কাকো নাপাওঁ।* (ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ বুকুত সূৰ্যাস্ত, পৃ. ১০) আন এটি গল্প *এদিন দীঘলী পুখুৰীৰ পাৰত* এই ৰীতিৰ প্ৰয়োগ হৈছে এনেদৰে— *আঘোণমহীয়া শুকান ঠাণ্ডা বতাহ এছাটি মোৰ পকা চুলিৰ মাজেৰে পাৰ হৈ যোৱা যেন অনুভৱ হ'ল। তাৰ পাছত ডালটোৰ আধা পকা আৰু শুকান পাতবোৰ কঁপাই তুলিলে। সেই শীতল শুকান বতাহজাকত গছজোপাৰ শুকান পাত এটা চিৰদিনৰ বাবে বতাহত সৰি পৰিল। পল্লৱৰাশিৰ পৰা চিৰদিনৰ বাবে অস্তিত্ববিহীন হৈ পৰা পাতটোৱে থিতাপি ল'লে পুখুৰীৰ পানীত। ঢোৱে ঢোৱে ঠেকা খাই পাতটোৱে ইফালৰ পৰা সিফাললৈ যাবলৈ ধৰিলে— কোনো নির্দিষ্ট গতি নাই* (ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ বুকুত সূৰ্যাস্ত, পৃ.১৪৬) সেইদৰে *বুদ্ধদেৱৰ প্ৰত্যাৱৰ্তন* নামৰ গল্পটোত indirect interior monologue-ৰ প্ৰয়োগ হৈছে এনেদৰে— *আজিকালি মূৰ কটা-কটি হোৱাটো ধাননি পথাৰত ধান কটাৰ নিচিনা— গৰ্ব কৰি কৈছিল শিল্পশিখাই। তাৰ পাছত ধেক্‌ধেক্‌কৈ হাঁহি এটাও মাৰিছিল আৰু পৰম উৎসাহেৰে ক'বলৈ ধৰিছিল— "বুজিছা বুদ্ধদেৱ, বৰ্তমান ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ পাৰ কোনে শাসন কৰিছে জনা নাযায়।... আৰু সত্যৰেখাই মোক মাজে মাজে ম'বাইলত সোধে— "শিল্পশিখা, ক'চোন বাৰু বুদ্ধদেৱে তোলৈ কিবা খবৰ পঠিয়াইছে নেকি?...* (গুৱাহাটীয়া গল্পগুচ্ছ, পৃ.৬২)। *যাযাবৰ* গল্পৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ অস্থিৰ আৰু ভাবুক। বয়স ত্ৰিশৰ ডেওনা পাৰ হৈ যোৱাৰ পিছতো বাস্তৱৰ কঠোৰ প্ৰত্যাহ্বান গ্ৰহণ কৰিবলৈ শিকা নাই। তথাপি আত্ম - সমালোচনাৰ বাবে নিজৰ দোষ - ত্ৰুটীবোৰ ডায়েৰীত লিখি আত্ম - সংশোধনৰ চেষ্টা এটা কৰিছে। আত্মকেন্দ্ৰিক বিষাদৰ বাবেই চৰিত্ৰটোৰ অন্ধকাৰৰ প্ৰতি বাঢ়ি আহিছে এক দুৰ্বাৰ আকৰ্ষণ। গল্পটোত Direct interior monologue ৰ প্ৰয়োগ হৈছে এনেদৰে — *অন্ধকাৰৰ প্ৰতি ইমান দুৰ্বাৰ আকৰ্ষণ মই কোনোদিনেই কৰা নাছিলোঁ। সিদিনা তেনে এক আকৰ্ষণ অনুভৱ কৰিলোঁ। অন্ধকাৰৰ মাজত বিষাদ মনেৰে নীৰৱে অকলশৰে বহি থাকি ভাল লাগিল। কিয়নো ভাল লাগিল তাকেই এবাৰ ভাবি চালোঁ ঃ হয়তো তেপে এক অভিলাষ কেতিয়াবাৰ পৰা মোৰ অৱচেতন মনত বন্ধা আছিল। সেইবাবেই ভাল লাগিল কিজানি* (ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ বুকুত সূৰ্যাস্ত , পৃ ৮১)। *মুখামুখি* গল্পটোত Direct interior monologueৰ প্ৰয়োগ হৈছে এনেদৰে ---- *এবাৰ মই শৰৎকালৰ পূৰ্ণিমাৰ ৰাতি নাৱৰে ব্ৰহ্মপুত্ৰ পাৰ হৈছিলোঁ। সেই ৰাতিটোৰ স্মৃতিখিনি এতিয়াও কেতিয়াবা মোৰ মনত মুকুতা এটাৰ দৰে জলমলাই উঠে। বহু সময় পাৰ কৰি দিব পাৰোঁ সেই স্মৃতিখিনি লিৰিকি - বিদাৰি। চোৱা , আমাৰ এই হোটেলৰ পাছফালে ব্ৰহ্মপুত্ৰ। বৈ আছে অনন্তকাল* (কফি হাউছত কেইঘণ্টামান , পৃ . ১)। *পদুম পুখুৰীত এহাল ৰাজহাঁহ* গল্পটোত Direct interior monologue ৰ প্ৰয়োগ হৈছে এনেদৰে --- *জীৱনৰ কোনো সংগতি নাই। সময়ে যে মোক ক'লৈ লৈ যাব খুজিছে ক'ব নোৱাৰোঁ। শান্ত নিৰিবিলি জগত এখন বিচাৰি চহৰ এৰি আহিছিলোঁ ইয়ালৈ। কিন্তু ইয়ালৈকো নামি আহিব এতিয়া ড্ৰিলিং অপাৰেচন , ছয়ল টেষ্টিং কৰ্পোৰেচন।... মচা যাব বকুল ফুলৰ ছাঁত থকা পোতা বাঁহৰ চাং , পুখুৰী , ৰঙা পদুম , শুকুলা ৰাজহাঁহ ... আৰু পদুম পুখুৰীৰ সিপাৰৰ সেউজীয়া ধাননি* (কফি হাউছত কেইঘণ্টামান, পৃ. ৯৫)।

সময়ৰ ধাৰাবাহিকতাৰ বৰ্ণনা গল্পবোৰত নাই। যিটো ভট্টাচাৰ্যৰ গল্পৰ অন্যতম এক বৈশিষ্ট্য। একেটা গল্পৰ

মাজতেই চৰিত্রই বাহ্যিক সময় আৰু আন্তৰিক সময় এই দুয়োটাৰ মাজত সহাৱস্থান কৰিছে। পূৰ্বতে দৰ্শন শাস্ত্ৰত এই ধাৰণা আছিল যে সময় অজস্ৰ বিচ্ছিন্ন বিন্দুৰ এটি লানি। সময় এটা বিন্দুৰ পৰা আন এটা বিন্দুলৈ জঁপিয়াই জঁপিয়াই যায়। কিন্তু ঊনবিংশ শতিকাৰ শেষৰপিনে এই ধাৰণা গঢ় লৈ উঠিল যে সময় দৰাচলতে অবিৰতভাৱেহে বৈ যায়। ফৰাচী দাৰ্শনিক বেৰ্গছেঁই সময়ৰ নিৰৱচ্ছিন্ন প্ৰবাহৰ কথা কোৱাৰ উপৰি ইয়াক দুটা ভাগত ভাগ কৰিছে আন্তৰিক সময় আৰু যান্ত্ৰিক সময়। কিন্তু ব্যক্তিগত জীৱনত প্ৰত্যেক ব্যক্তিৰ মনত অনুভূত হোৱা সময় হৈছে আন্তৰিক সময়। সেয়ে ঘঁড়ীৰ সময় দুঘণ্টা হ'লেও ব্যক্তিৰ মানসিক পৰিস্থিতি অনুসৰি দুই মিনিটো লাগিব পাৰে। (শৰ্মা, পৃ.৪১)[২৩] সময় আৰু Space Montage সম্পৰ্কত ডেভিদ ডেইচেজে দুটা পদ্ধতিলৈ আঙুলিয়াইছে। প্ৰথমতে ব্যক্তিৰ চেতনা সময়ৰ সৈতে গতি কৰি থাকে, time montage-ৰ image বা ধাৰণাবোৰো এটা সময়ৰ পৰা আন এটা সময়লৈ গতি কৰে। আনটো হৈছে সময় নিৰ্ধাৰণ কৰা spatial element বোৰ সলনি কৰিবলৈ। এই পদ্ধতি পৰাপক্ষত চেতনা প্ৰবাহৰ ৰীতিৰূপে প্ৰয়োগ নহয়। এটা উপকৌশল ৰূপেহে প্ৰয়োগ হয় (Humphrey, p.45)।[২৪] ভট্টাচাৰ্যৰ গল্পৰ চৰিত্রই বেৰ্গছেঁ নিৰ্ধাৰণ কৰা দুয়োবিধ সময়ৰ মাজত সহাৱস্থান কৰিছে। বাহ্যিক সময়ত চৰিত্রবোৰ সচেতন, বাস্তৱৰ প্ৰতি উদ্বিগ্ন, সুন্দৰ ভৱিষ্যতৰ পৰিকল্পনাৰে। আনহাতে আন্তৰিক সময়ত এই একেকেইটা চৰিত্রই হৈ পৰে বাস্তৱৰ প্ৰতি উন্মুখ, স্বপ্ন বিভোৰ। এইখিনিতে *কফি একাপ খাবা নেকি* গল্পটো আলোচনালৈ আনিব পাৰি। গল্পকাৰে যদিও পাশ্চাত্য কলা-কৌশলৰ প্ৰয়োগ সজ্ঞানে গল্প-উপন্যাসত কৰা নাই বুলি স্বীকাৰ কৰিছে তথাপি গল্পটোৰ কথকতাত সুস্পষ্টভাৱে ব্যৱহৃত আন্তৰিক সময়ৰ ব্যাখ্যাই তাক সম্পূৰ্ণৰূপে নসাৎ কৰে। কষ্ট আৰোপিত যেন লগা এনেধৰণৰ কৌশলৰ প্ৰয়োগে গল্পটোৰ পৰা স্বাভাৱিক স্বাচ্ছন্দ্য আঁতৰাই নিয়া যেন অনুভৱ হয়— *কাৰণ মই যে ঘড়ীৰ কাঁটা মতে এইমাত্ৰ চলিব খোজা নাই— মই চলি আছোঁ আন্তৰিক সময়ত। সেয়ে মোৰ চেতনা বহুতৰপীয়া। কিন্তু জানিব পৰা হোৱা নাই মীনাক্ষিৰ চেতনা কেইতৰপীয়া? চেতনাৰ এটা তৰপত মই মীনাক্ষিৰ সন্মুখত ৰৈ আছোঁ ঠিকেই; কিন্তু তাৰ লগে লগে হেৰুৱাই গৈ আছোঁ নিজৰ সময়। মই যেন মোৰ আন্তৰিক সময়ৰ সৈতে।* (গুৱাহাটীয়া গল্পগুচ্ছ, পৃ.৪০) তাৰপিছত চৰিত্রটো পুনৰ সেই ছোৱালীজনীৰ চিন্তাত বুৰ গৈছে। তেনেতে কথকৰ মনলৈ আহিল নিজৰ অস্তিত্ব সম্পৰ্কীয় চেতনা। এই বৈশিষ্ট্য প্ৰতিফলিত হৈছে *ছাতি* গল্পটোত এনেদৰে— *খিৰিকীৰে দেখিলোঁ দেউতাই পাকঘৰৰ দাঁতিত কিবা এক অজ্ঞাত দুঃচিন্তা লৈ থিয় হৈ আছে। জীৱন যুঁজত যুঁজি যুঁজি জীয়াই থাকি শুকাই-খীণাই জৰী যেন হোৱা দুঃচিন্তাৰে ভৰা এখন নিৰুৎসাহী মুখ।... শৈশৱত দেউতাই মোক মৰমতে মূৰত এটা ঊণৰ টুপী পিন্ধাই ডিঙিত মাফ্লাৰ লগাই জাৰকালি আলিয়ে আলিয়ে ফুৰিবলৈ নিছিল।... এইবোৰ হঠাৎ কেতিয়াবা চিৰিংকৈ মনত পৰে। যেতিয়া মনত পৰে আপোনা আপুনি গিৰ্‌গিৰাই চকুপানী ওলায়।* (ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ বুকুত সূর্যাস্ত, পৃ.২৪)। *পদুম পুখুৰীত এহাল ৰাজহাঁহ* গল্পৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ বিভূতিভূষণে ধাননিৰ মাজেৰে ৰাজহাঁহ এজনীক ধৰিবলৈ বুলি দৌৰি যোৱা ল'ৰাজনক নিজৰ চেতনাত দেউতাক , নীলাঞ্জনা বা নিজৰ ৰূপত দেখিছে । তাৰ পিছতেই চৰিত্রটোৰ চেতনা কেন্দ্ৰীভূত হৈছে তেখেতৰ কৈশোৰৰ গুৱাহাটী চহৰখনত। কৈশোৰৰ সেই গ্ৰাম্য চহৰখন এতিয়া মহানগৰলৈ ৰূপান্তৰ হৈছে সকলো ধৰণৰ গ্ৰাম্য সৰলতা ধুৱাই নি — *ল'ৰাজন সেউজীয়া ধাননিৰ মাজতহেৰাই যোৱাৰ পিছত মোৰ সমগ্ৰ চিন্তাটোতেই আউল লাগিবলৈ ধৰিলে । মই তাইৰ কথা পাহৰিবলৈ চেষ্টা কৰিলোঁ , কিন্তু নোৱাৰিলোঁ। কাৰণ পৰিৱেশটোৰ লগত কৈশোৰৰ মোৰ গুৱাহাটী চহৰখনৰ মিল আছে -- সেইকাৰণেই ।... আমি আছিলোঁ গৱাহাটীৰ উপকণ্ঠ অঞ্চলত । গ্ৰাম্য পৰিৱেশৰ গুৱাহাটী চহৰ । ... আমাৰ চুবুৰীতো আছিল এখন পোতা বাঁহৰ চাং । পাছফালে এজোপা বকুল গছ । সেই পদুম পুখুৰীত চৰিছিল মোৰ পোহনীয়া ৰাজহাঁহযোৰ* (কফি হাউছত কেইঘণ্টামান, পৃ.৯৬)। *কোনো মানুহ মৰা নাই , নমৰেও* গল্পটোত কেন্দ্ৰীয় চৰিত্রটোৱে বাস্তৱ আৰু সপোনত একে সময়তে বিচৰণ কৰি ফুৰিছে — *বাৰিষাৰ চিপচিপ বৰষুণৰ মাজত অথবা গ্ৰীষ্মৰ প্ৰখৰ ৰ'দতো আনকি সি নীলাকৃষ্ণৰ বাবে ঘণ্টাৰ পাছত ঘণ্টা কলেজ স্কোৱেৰত*

অপেক্ষা কৰি থাকে । তাইৰ হাতৰ ফুলাম ছাতিয়ে আনকি তেওঁক সপোনতো খেদি ফুৰিছিল ... এখন বিশাল মৰুভূমিৰ মাজতসি শুই থাকে ... কেৱল ধূ ধূ বালিচৰ , কাষেদি পাৰ হৈ যায় কেৰাভানবোৰ ; এটা উটৰ পিঠিত উঠি আহে নীলাকৃষ্ণ ; (আধুনিকোত্তৰ আঠাইছটা চুটিগল্প, পৃ.১৩)।

চেতনা প্ৰবাহৰ ৰীতিত মানুহৰ অন্তঃজগতৰ গভীৰ দ্বন্দ্বৰ প্ৰকাশ ঘটে। চৰিত্ৰৰ ক্ৰিয়া-প্ৰতিক্ৰিয়া দেখুওৱাটোৱেই এই ৰীতিৰ মূল উদ্দেশ্য। মানুহৰ মনৰ অসংখ্য চিন্তা-ভাৱনা আৰু অনুভৱক টুকুৰা-টুকুৰভাৱে এই ৰীতিত দাঙি ধৰিবলৈ বিচাৰে। তাৰবাবে প্ৰত্যক্ষ আৰু পৰোক্ষ অন্তৰ্ভাবনা, সৰ্বজ্ঞ বিৱৰণ আৰু স্বগতোক্তিৰ সহায় লোৱা হয়। ভট্টাচাৰ্যৰ গল্পত মূলতঃ চৰিত্ৰৰ অন্তৰ্জগতখনকেই দাঙি ধৰা হৈছে। প্ৰায়সংখ্যক গল্পতেই এটা নিৰ্দিষ্ট চৰিত্ৰৰ জৰিয়তে অভিজ্ঞতা আৰু ভাবনাৰ বৰ্ণনা দিয়া হয়। লেখকৰ নিৰ্বাচিত এই প্ৰতিনিধিত্বমূলক চৰিত্ৰটোৰ অন্তঃজগতৰ ক্ৰিয়া-প্ৰতিক্ৰিয়াৰ জৰিয়তেই গল্পৰ কাহিনী গঢ় লয়। সেয়ে লেখকৰ নিৰ্বাচিত চৰিত্ৰটোৰ অন্তঃজগতৰ ক্ৰিয়া-প্ৰতিক্ৰিয়া তেখেতৰ গল্পৰ মূল চালিকাশক্তি। গল্পকাৰৰ প্ৰায়ভাগ গল্পতেই এই নিৰ্দিষ্ট চৰিত্ৰটোৰ অন্তৰ্ভাবনা, অভিজ্ঞতা প্ৰতিফলিত হৈছে। *কচুপাতত এজনী কাউৰী* গল্পটো কন্যাদায়গ্ৰস্ত দৰিদ্ৰ পিতৃ আৰু সেই পিতৃজনৰ মাজতেই লুকাই থকা নিজৰ অৱস্থাৰ পৰিৱৰ্তনৰ সপোন দেখা উচ্চাংকাক্ষী পিতাকজনৰ দ্বিমাত্ৰিক চৰিত্ৰৰ চিত্ৰায়নে মানুহৰ কৰুণ অৱস্থা আৰু ৰূঢ় বাস্তৱতাক প্ৰতিফলিত কৰিছে। অফিচ এটাত কেৰাণীৰ চাকৰি কৰা কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰৰ এটা ছাতি কিনিবৰ জোখাৰে সামৰ্থ নথকাৰ জৰিয়তে উদঙাই দিয়া হৈছে নিম্ন মধ্যবিত্তৰ জীৱন। কিন্তু তেওঁ যে আৰ্থিক অনাটনৰ মাজতো ল'ৰা-ছোৱালী কেইটাক আনুষ্ঠানিক শিক্ষা প্ৰদান কৰিছে সেয়া গল্পৰ কাহিনীত স্পষ্ট। অৱশ্যে সন্তানকেইটি যে তেওঁৰ সেই ত্যাগ স্বীকাৰত সম্পূৰ্ণ নিৰ্বিকাৰ সেয়াও স্পষ্ট। অফিচৰ ডিৱেক্টৰে তেওঁৰ প্ৰতি কৰা ব্যৱহাৰৰ অভিজ্ঞতাই তেওঁৰ সত্তাক জোঁকাৰি গৈছে। নিজৰ লগত হোৱা বাস্তৱ অভিজ্ঞতাৰ স্ফুৰণক তেওঁ ভৱিষ্যতেও হ'ব পৰা একেই পৰিস্থিতিৰ লগত তুলনা কৰিছে— *হঠাতে মোৰ মনৰ মাজত বিদ্রোহৰ অগনি দপ্‌দপ্‌কৈ জ্বলি উঠিল। ডাঙৰ ল'ৰাজনক লৈ কৰা মোৰ মনৰ সমগ্ৰ জল্পনা-কল্পনা চূৰ্ণ-বিচূৰ্ণ হৈ গ'ল। যদি মোৰ ল'ৰাজনেও বিষয়া হৈ এই অফিচৰ ডিৱেক্টৰৰ নিচিনা ব্যৱহাৰ কৰে? মোৰ দৰে দুখীয়া কেৰাণীসকলক সি হয়তো মানুহ বুলিয়েই নাভাবিব। যোৱা মাহৰপৰা সি মোক মাতিব নোখোজাৰ হয়তো এইটোৱে কাৰণ। সি যদি ক'ৰবাত ডিৱেক্টৰ বা উপাযুক্ত হৈ মোৰ দৰে বৃদ্ধ কেৰাণীক কুকুৰৰ দৰে ব্যৱহাৰ কৰে? তেতিয়াহ'লেতো মোৰ জীৱনৰ সমগ্ৰ উদ্দেশ্য ব্যৰ্থ হোৱা বুলিয়েই ধৰি ল'ব লাগিব।* (নিৰ্বাচিত অসমীয়া গল্প, পৃ.৩৫৩) সাম্প্ৰতিক সময়ৰ শিক্ষিত নিবনুৱাৰ সমস্যাৰে ৰচিত গল্প *ছাতিত* কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ শশাংকৰ মনৰ দ্বন্দ্ব গল্পটোত সুন্দৰভাৱে প্ৰতিফলিত। উচ্চশিক্ষা গ্ৰহণ কৰিও দেউতাকৰ আৰ্জনৰ ওপৰত নিৰ্ভৰশীল হৈ থকা শশাংকৰ অন্তৰ্দ্বন্দ্ব প্ৰকাশ পাইছে এনেদৰে— *মই এটা কৰ্মব্যস্ততা বিচাৰোঁ। কিন্তু ক'তো একো বিচাৰি নাপাওঁ। কি কৰোঁ, ক'লৈ যাওঁ, এনেকুৱা এটা ভাব লৈ ঘৰৰ পাছ দুৱাৰেদি নিঃশব্দে সোমাই নিজৰ কোঠাৰ দুৱাৰ মাৰি অন্ধকাৰৰ মাজত নীৰৱে টকুপানী টুকো... । পথ বিচাৰি বিচাৰি হাবাথুৰি খাওঁ। যদি সেই পথ বিচাৰি পালোহেঁতেন মোৰ দৰে সুখী কিজানি দ্বিতীয়জন কোনোৱেই নোলালহেঁতেন।* (ব্ৰহ্মপুত্ৰৰ বুকুত সূর্যাস্ত, পৃ.১৪) সেইদৰে *ডিঙি কটা ছাগলীৰ চকুত* ডিৱেক্টৰ গল্পটোত উচ্চ শ্ৰেণীৰ চৰকাৰী চাকৰিয়ালসকলৰ অৱসৰৰ পিছত হোৱা সামাজিক-মানসিক অৱস্থাটোক প্ৰকাশ কৰা হৈছে গল্পটোৰ কেন্দ্ৰীয় চৰিত্ৰ অৱসৰ লোৱা ডিৱেক্টৰজনৰ জৰিয়তে। সমাজৰ নিম্ন-মধ্যবিত্ত দৰিদ্ৰক সকাহ দিয়াৰ সলনি এচাম চৰকাৰী চাকৰিয়ালে ডকা-হকা দি এই শ্ৰেণীটোক শোষণ কৰি আহিছে। তেওঁলোকৰ ব্যৱসায়-বাণিজ্য নিৰাপদে চলি থাকিবলৈ হ'লে উচ্চ চৰকাৰী চাকৰিয়ালক ভাৰ-ভেটী দি থকাটো যেন ব্যৱসায়ৰ অঙ্গস্বৰূপ। সেয়ে গল্পৰ ডিৱেক্টৰজনে অৱসৰ পোৱাৰ পিছত পোৱা ব্যৱসায়ীসকলৰ ব্যৱহাৰত আচৰিত হৈছে। এনে পৰিস্থিতিত ডিৱেক্টৰজনৰ মানসিক পৰিস্থিতিৰ ছবি গল্পকাৰে এনেদৰে অংকন কৰিছে— *"চিনি পাইছোঁ-আপুনি অৱসৰ পালে নহয়।"— কচাইজনে হাড় এডাল দুটুকুৰা কৰি ক'লে। মৰ্মাহত হৈ ডিৱেক্টৰে চাৰিওফালে*

চালে। তাৰপাছত জোতা, জোতাৰ লেছ, পেণ্ট, কোট, টাইৰপৰা চকু ঘুৰাই মাংসৰ দোকানৰ আয়নাখনত প্রতিবিম্বিত নিজৰ নিষ্প্রভ মুখখনলৈ চালে। তেওঁৰ এনে লাগিল যেন ছাগলীৰ মুৰটোৱে তেওঁক তাচ্ছিল্য কৰি ঢেক্‌ঢেকাই হাঁহি আছে। সকলো বাদ দি তেওঁ নিজেই নিজৰ দুখত ভাগি পৰিল। সমুখৰ আৰ্চিখনলৈ চালে। চকু দুটা ডিঙি কটা ছাগলীৰ চকু দুটাৰ লগত যেন একেই— নিষ্প্রভ, শেঁতা, বিবর্ণ, অনুজ্জ্বল। (আধুনিকোত্তৰ আঠাইছটা চুটিগল্প, পৃ.৩৯)

চেতনা প্রবাহ ৰীতিৰ আন এটা বৈশিষ্ট্য হৈছে *লেখক আৰু নায়ক ইয়াত একাত্ম হৈ পৰে। নায়কৰ চেতনাৰ স্তৰলৈ উন্নীত হ'বলৈ লেখকৰ স্বতন্ত্রতা লোপ পোৱাই স্বাভাৰিক।*[২৫] চেতনা প্রবাহৰ লেখকসকলে সচেতন মনৰ চিন্তা-প্রবাহৰ মাজেদি মনৰ যুক্তি আৰু শৃংখলাবর্জিত গভীৰতৰ পর্যায়লৈ অনুধাৱন কৰে। সেয়ে তেওঁলোকে অস্তিত্ব সর্বস্ব মানুহৰহে সন্ধান কৰে। ভট্টাচার্যৰ গল্প পঢ়িলে অনুভৱ হয় তেৱোঁ যেন গল্পৰ চৰিত্রবোৰৰ অন্তর্জগতখন লৈহে সদা ব্যস্ত। পার্থিৱ জীৱনৰ অভিজ্ঞতাৰে তেখেতৰ গল্পৰ চৰিত্রবোৰে চেতনাৰ জগতখনত প্রৱেশ কৰে। চৰিত্রৰ চেতনাৰ এই জগতখনত গল্পকাৰো যেন সম্পৃক্ত হৈ পৰে। উদাহৰণস্বৰূপে *ব্রহ্মপুত্র মোৰ বন্ধু* গল্পটোৰ, সুজাতা চৰিত্রৰ বক্তব্য সুস্পষ্ট কৰিবলৈ চৰিত্রটোৰ মুখত প্রদান কৰা সংলাপে চৰিত্রৰ চেতনাৰ জগতখন উন্মোচিত কৰে। চৰিত্রটোৰ চেতনাৰ এই জগতখনত গল্পকাৰৰ স্বতন্ত্রতা সম্পূর্ণ লুপ্ত— *প্রতিদিন আবেলি মই ব্রহ্মপুত্রৰ সলিলৰাশিলৈ চাই চাই পাৰৰ বিশাল কদমজোপাৰ তলত নীৰৱে বহি বহি মোৰ জীৱনৰ অর্থ বিচাৰোঁ। যাতে, মই একেই আশা লৈ পৃথিৱীৰ পৰা বিদায় ল'ব পাৰোঁ।* (গুৱাহাটীয়া গল্পগুচ্ছ, পৃ.৯৫) সংকলনখনৰ দার্শনিক প্রধান গল্প *নদীত* লেখক আৰু কেন্দ্রীয় চৰিত্রৰ অন্তর্ভাবনাৰ একাত্মতা পৰিস্ফুট হৈছে এনেদৰে— *"সেইখনো তুমিয়েই। তুমি এতিয়া ভটিয়নী পানীৰ পালতৰা নাও — উটি গৈ আছা — এদিন ময়ো উটি যাম — এই পৃথিৱীৰ সকলো মানুহ উটি যাব নিজৰ সমুখৰ নদীখনেৰে — আৰু, সেইকাৰণে গুলঞ্চ ফুলবোৰ তোমাৰ মনত কুৎসিত কুৎসিত লাগে — ভটিয়নী পানীৰে গৈ থকা মানুহবোৰৰ মানসিকতা এনেকুৱাই।"* (গুৱাহাটীয়া গল্পগুচ্ছ, পৃ.১২০)

চেতনা প্রবাহৰ লেখকে প্রভূত পৰিমাণে কল্পচিত্রৰ প্রয়োগ কৰে। কল্পচিত্রৰ প্রয়োগৰ বাবে ঘাইকৈ তেওঁলোকে দুটা পদ্ধতিৰ প্রয়োগ কৰে (Humphrey, p.67)।[২৬] *চেতনা প্রবাহৰ অর্ন্তমুখীতাক প্রকাশ কৰিবলৈ চিত্র আৰু প্রতীকৰ ব্যৱহাৰ যথাযোগ্য। অর্ন্তমুখী আৱেগৰ মূল্যক পৰামর্শ দিয়ে চিত্রই আৰু প্রতীকে প্রসাৰিত অর্থৰ পৰামর্শ দিয়ে।*[২৭] ভট্টাচার্যই গল্পৰ মাজত প্রয়োগ কৰা কল্পচিত্রৰ উদাহৰণ— *আঘোণৰ সোণালী ধাননিৰে পৰিপূর্ণ পথাৰৰ দৰেই প্রেৰণাময়।* (গুৱাহাটীয়া গল্পগুচ্ছ, পৃ.২৯) *পিছফালৰ তামোলবোৰ পকি পকি কমলাৰ ৰং লৈছে। পাতত ওলমিছে দহ-পোন্ধৰটা টোকোৰা চৰাইৰ বাহ।* (গুৱাহাটীয়া গল্পগুচ্ছ, পৃ.৩০) চেলেকণা মাছৰ দৰে চকু দুটাই মোক সেইফালে চাই থাকিবলৈ বাধ্য কৰালে। (গুৱাহাটীয়া গল্পগুচ্ছ, পৃ.৪১)

৩.০০ সামৰণি আৰু সিদ্ধান্ত ঃ

আলোচনাৰ পৰা দেখা যায় যে ভট্টাচার্যৰ গল্পৰ চৰিত্রবোৰ সমাজ বিচ্ছিন্ন নহয়। সেয়ে চৰিত্র আৰু গল্পৰ কাহিনীৰ মাজত অসংলগ্ন, শৃংখলাবিহীন ক্রম ৰক্ষা পৰা নাই। প্রায়ভাগ গল্পতে অন্তৰ সংলাপৰ প্রয়োগে চেতনা প্রবাহৰ এই বৈশিষ্ট্যটোৰ সার্থকভাৱে প্রয়োগ কৰিছে। বের্গছেঁ নির্দেশ কৰা সময়ৰ ধাৰণা অনুসৰি চৰিত্রবোৰ একেসময়তে বাহ্যিক আৰু আন্তৰিক এই দুয়োটা সময়ৰ সৈতে সহাৱস্থান কৰিছে। চৰিত্রবোৰৰ অন্তর্জগতৰ গভীৰ দ্বন্দ্বৰ প্রকাশ দেখুৱাবলৈ চৰিত্রৰ অন্তর্ভাবনা, সর্বজ্ঞ বিৱৰণ আৰু স্বগতোক্তিৰ সহায় গল্পবোৰত লোৱা হৈছে। চৰিত্রৰ অন্তর্জগত লৈ সদা ব্যস্ত গল্পকাৰ চৰিত্রৰ চেতনাৰ সৈতে সম্পৃক্ত হৈ পৰিছে পার্থিৱ অভিজ্ঞতাৰ জৰিয়তে। গতিকে আলোচনাটোৰ পৰা দেখা যায় চেতনা প্রবাহৰ কিছু বৈশিষ্ট্যৰ অনুৰণন ভট্টাচার্যৰ গল্পত প্রতিফলিত হৈছে। আলোচ্য পত্রখনত ভট্টাচার্যৰ গল্প সম্পর্কে কৰা আলোচনাটোৰ পৰা আমি কেইটামান সিদ্ধান্তত উপনীত হ'ব পাৰোঁ।

১। গল্পৰ মাজত সংলগ্ন-অসংলগ্ন, ঘটনা-উপঘটনা চৰিত্রৰ চেতনাৰ জৰিয়তে প্রতিফলিত হৈ বিবেকৰ প্রবাহ মূল বৈশিষ্ট্য ৰূপে ধৰা দিছে।

২। মুখ্য চৰিত্রৰ মানসিক জগতৰ সম্ভেদ গল্পকাৰে

পাঠকৰ সন্মুখত উন্মোচিত কৰিছে যদিও গল্পকাৰে নিজা কোনো মন্তব্যকে সঠিক বুলি দাঙি ধৰাৰ চেষ্টা কৰা নাই।

৩। জীৱনৰ দ্বন্দ্ব, জটিলতা, আধুনিক জীৱনৰ নিঃসংগতা, বিচ্ছিন্নতা আদি দাঙি ধৰাই গল্পকাৰৰ অন্যতম প্ৰয়াস বাবেই গল্পৰ মাজত চৰিত্ৰৰ বিকাশ দেখা নাযায়। কেৱল চৰিত্ৰৰ মনৰ খবৰহে পাঠকৰ সন্মুখত দাঙি ধৰা হৈছে। নিৰ্বাচিত সৰ্বদৰ্শিতাৰ জৰিয়তে ইয়াৰ বিবৃতি কৰা হৈছে।

৪। ছবি তোলাৰ পদ্ধতিৰ অনুৰূপত জীৱনৰ একো একোটা খণ্ডচিত্ৰ পোনপটীয়াকৈ পাঠকৰ সন্মুখত তুলি ধৰা হৈছে।

প্ৰসঙ্গটীকা ঃ

১ JAMES E. Cutting. *Impressionism and Its Canon*, Library of Congress, University Press of America, 2006, P-12.

২ Ibid, P-12.

৩ Ibid, P-11.

৪ Walter Besant and Henry James, The Art of Fiction, Cornell University Library [http://www.archive.org/details/cu 31924027192941]

৫ বৰুৱা, প্ৰহ্লাদ কুমাৰ। *অসমীয়া চুটিগল্পৰ অধ্যয়ন*। বনলতা, ডিব্ৰুগড়-১, পুনৰ মুদ্ৰণ, ২০১৭, পৃ.৪৪৪।

৬ JAMES, WILLIAM. *The principles of psychology* (Vol-I), Henry Holt & Company, New York, p.200.

৭ HUMPHREY, ROBERT. *Stream of consciousness in the modern novel.* University of California Press, Benkeley and Los Angles, 1958, p.5.

"he has represent the actual texture of consciousness (2) he has to distill some meaning from it for the reader."

৮ JAMES, WILLIAM., p.200.

"It is nothing jointed ; it flows. A 'river' or 'a stream' are the metaphors by which it is most naturally described. In talking of it hereafter, let us call it the stream of thought, of consciousness, or of subjective life."

৯ HUMPHREY, ROBERT., p.5.

১০ HUMPHREY, ROBERT., p.55.

"he has represent the actual texture of consciousness (2) he has to distill some meaning from it for the reader."

১১ ibid, p.8.

১২ শৰ্মা, গোৱিন্দ প্ৰসাদ। *উপন্যাস আৰু অসমীয়া উপন্যাস।* বনলতা, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী-১, প্ৰথম বনলতা সংস্কৰণ, জুন, ২০১৫, পৃ-৫৩।

১৩ HUMPHREY, ROBERT., p.23.

"direct interior monologue, indirect interior monologue, omniscient description and soliquy."

১৪ বৰুৱা, প্ৰহ্লাদ কুমাৰ। পৃ.৪৪৪।

১৫ প্ৰাগুক্ত গ্ৰন্থ, পৃ.৪৪৫।

১৬ *চেতনাৰ সম্ভাৱনাৰে পার্থিৱ জগতক বিচাৰ কৰাৰ প্রয়াস।* বৰকটকী, অৰিন্দম, *সাতসৰী*, সপ্তম বছৰ, ষষ্ঠ সংখ্যা, জানুৱাৰী, ২০১২, পৃ.৪৮।

১৭ *মই গল্প অথবা উপন্যাসৰ জৰিয়তে গদ্য কবিতাই লিখিছোঁ* (ভূপেন্দ্র নাৰায়ণ ভট্টাচার্য্যৰ সৈতে শোণিত বিজয় দাসৰ কথোপকথন। *কথা গুৱাহাটী*, শোণিত বিজয় দাস (সম্পা.), দ্বিতীয় বছৰ, দশম সংখ্যা, মার্চ, ২০০৬, পৃ.১৫।

১৮ *চেতনাৰ সম্ভাৱনাৰে পার্থিৱ জগতক বিচাৰ কৰাৰ প্রয়াস।* বৰকটকী, অৰিন্দম, উল্লেখিত আলোচনী, ২০১২, পৃ.৪৮।

১৯ Humphrey, Robert, ibid, p.55

২০ Ibid, p.23

"The speech of a character in a scene, having for its object to introduce us directly into the interior life of that character, without author intervention through explanation or commentaries."

২১ বৰা, মহেন্দ্র। *সাহিত্য উপক্রমণিকা।* ষ্টুডেণ্টচ্ ষ্টৰ্চ, কলেজ হোষ্টেল ৰোড, গুৱাহাটী-৭৮১০০১, ষষ্ঠ সংস্কৰণ, আগষ্ট, ২০১৯, পৃ.১৫৮।

২২ Humphrey, Robert, ibid, p.24

২৩ শর্মা, গোৰিন্দ প্রসাদ। পৃ-৪১।

২৪ Humphrey, Robert, ibid, p.45

২৫ বৰা, অপূর্ব (সম্পা.)। *অসমীয়া চুটিগল্প ঐতিহ্য আৰু বিৱর্তন।* যোৰহাট কেন্দ্রীয় মহাবিদ্যালয় প্রকাশন কোষ, ২০১২, পৃ.৬৩০।

২৬ Humphrey, Robert, ibid, p.67

২৭ Humphrey, Robert, ibid, p.68

"image and symbol tend to express something of the quality of privacy of consciousness; the image by suggesting the private emotional values of what is perceived; the symbol by suggesting the turn manner of perceiving and the expanded meaning"

গ্রন্থপঞ্জী ঃ

মুখ্য উৎস

ভট্টাচার্য, ভূপেন্দ্র নাৰায়ণ। *গুৱাহাটীয়া গল্পগুচ্ছ*। ভৱানী বুকছ, ভৱানী কমপ্লেক্স, হাতীশিলা, পানীখাইতি, গুৱাহাটী-৭৮১০২৬, প্রথম প্রকাশ, জুন, ২০১৫।

ঐ।**ব্রহ্মপুত্রৰ বুকুত সূর্যাস্ত।** ফ্রেণ্ডছ পাব্লিকেশ্যন, দিশপুৰ, গুৱাহাটী-৭৮১০০৬, প্রথম প্রকাশ, নৱেম্বৰ, ২০০৩।

বৰকটকী, অৰিন্দম (সম্পা.) **নির্বাচিত অসমীয়া গল্প।** ক্রান্তিকাল প্রকাশন, হয়বৰগাঁও, নগাঁও-২, প্রথম প্রকাশ, ২০০৫।

ভট্টাচার্য্য, ভূপেন্দ্র নাৰায়ণ। **আধুনিকোত্তৰ আঠাইছটা চুটিগল্প,** এন.এল. পাব্লিকেশ্বনচ্, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী-১, প্রথম প্রকাশ, জানুৱাৰী, ২০০৭।

ঐ। **কফি হাউছত কেইঘণ্টামান।** জ্যোতি প্রকাশন, যশোৱন্ত পথ, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী-৭৮১০০১, প্রথম সংস্কৰণ, ডিচেম্বৰ, ২০০৭।

ঐ। **পাণবজাৰত এটা বাঘ।** এন.এল. পাব্লিকেশ্বনচ্, আনন্দৰাম বৰুৱা পথ, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী-৭৮১০০১, প্রথম প্রকাশ, ডিচেম্বৰ, ২০০৮।

প্রাসঙ্গিক গ্রন্থ ঃ

অসমীয়া ঃ

দাস, শোণিত কুমাৰ ; মুনীন বায়ন (সম্পা.)। *হীৰেন গোহাঁই ৰচনাৱলী ঃ প্রথম খণ্ড- বিষয় ঃ সাহিত্য।* কথা প্রকাশন, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী-১, প্রথম প্রকাশ, ২০০৯।

দত্ত, উদয়। *চুটিগল্প*। ষ্টুডেণ্টচ্ ষ্ট'ৰচ, কলেজ হোষ্টেল ৰোড, গুৱাহাটী-৭৮১০০১, পুনর্মুদ্রণ, আগষ্ট, ২০১৮।

বৰগোহাঞি, হোমেন (সম্পা.)। *অসমীয়া সাহিত্যৰ বুৰঞ্জী*, ষষ্ঠ খণ্ড (পৰিবর্ধিত সংস্কৰণ)। আনন্দৰাম বৰুৱা ভাষা-কলা-সংস্কৃতি সংস্থা, অসম, ৰজাদুৱাৰ, উত্তৰ গুৱাহাটী, গুৱাহাটী-৭৮১০৩০, চতুর্থ প্রকাশ, ২০১৭।

বৰা, মহেন্দ্র। *সাহিত্য উপক্রমণিকা*। ষ্টুডেণ্টচ্ ষ্ট'ৰচ, কলেজ হোষ্টেল ৰোড, গুৱাহাটী-৭৮১০০১, ষষ্ঠ সংস্কৰণ, আগষ্ট, ২০১৯।

বৰা, অপূর্ব (সম্পা.)। *অসমীয়া চুটিগল্প ঐতিহ্য আৰু বিৱর্তন।* যোৰহাট কেন্দ্রীয় মহাবিদ্যালয় প্রকাশন কোষ, ২০১২।

বৰুৱা, প্রহ্লাদ কুমাৰ। *অসমীয়া চুটিগল্পৰ অধ্যয়ন।* বনলতা, ডিব্রুগড়-১, পুনৰ মুদ্রণ, ২০১৭।

ভট্টাচার্য বৰুৱা, দীপালী, মণ্টু কুমাৰ বড়া আৰু জয়ন্ত পাঠক। *কৃষ্ণকুমাৰ মিশ্র ঃ জীৱন আৰু কৃতি।* কৃষ্ণকুমাৰ মিশ্রৰ এসত্তৰ বছৰীয়া জন্মদিৱস উদ্‌যাপন সমিতি, ভৱানী অফছেট, গুৱাহাটী, প্রথম প্রকাশ, পহিলা জানুৱাৰী, ২০১২।

শর্মা, গোৱিন্দ প্রসাদ। *উপন্যাস আৰু অসমীয়া উপন্যাস।* বনলতা, পাণবজাৰ, গুৱাহাটী-১, প্রথম বনলতা সংস্কৰণ, জুন, ২০১৫।

ইংৰাজী ঃ

JAMES E. Cutting. *Impressionism and Its Canon*, Library of Congress, University Press America, 2006

ROBERT, HUMPHREY. *Stream of consciousness in the modern novel.* University of California Press, Benkeley and Los Angles, 1958

WILLIAM, JAMES. *The principles of psychology* (Vol-I), Henry Holt & Company, New York.

Walter Besant and Henry James, The Art of Fiction, Cornell University Library [http://www.archive.org/details/cu 31924027192941]

নৱকান্ত বৰুৱাৰ শিশু সাহিত্য

✍ বিকাশ দাস

প্রস্তাৱনা ঃ "মাজে মাজে খদ্দৰৰ চুট পিন্ধে টাই মাৰে গেৰুৱা ৰঙৰ কণ কণ ল'ৰা-ছোৱালীয়ে সপোন দেখে সেইজন চুটি মানুহৰ" সৃষ্টিৰ পখিলা খেদি ফুৰা হেজাৰ শিশুৰ মনগহনত প্ৰৱেশ কৰি তেওঁলোকৰ স্বপ্নিল পৃথিৱীখনক বাস্তৱ ৰূপ দিয়া সকলোৰে বাবে ইমান সহজ নহয়। কিন্তু সেই কাম অনায়সে কৰিব পাৰিছিল জুনুকা বোলোৱা কাপেৰে, ঠুনকা-ঠানাক কোমলতাৰে মহেন্দ্ৰ বৰাই জাতিস্মৰ কবিতাটোত উল্লেখ কৰা সেই চুটি মানুহজনে। সেই চুটি মানুহজন হৈছে শিশুসকলৰ এখুদ ককাইদেউ আৰু প্ৰাপ্তবয়স্ক সকলৰ আধুনিক অসমীয়া কবিতাৰ অগ্ৰজ নৱকান্ত বৰুৱা। নৱকান্ত বৰুৱাৰ শিশু সাহিত্য সমগ্ৰৰ প্ৰথম খণ্ডৰ সূচীপত্ৰৰ পূৰ্বৱৰ্তী এটা পৃষ্ঠাত বীণা বৰুৱাই কৈছে -- 'এগৰাকী মাতৃয়ে জানে শিশু কেনেকৈ কণ কণকৈ বাঢ়ে আৰু কেনেকৈ সিহঁতৰ কণমানি জ্ঞানেৰে এখন ৰং চঙীয়া পৃথিৱীত পৰিভ্ৰমি ফুৰে। সিহঁতৰ কল্পনাৰ ৰঙীন পৃথিৱীখন ৰঙেৰে বোলোৱা কামটো প্ৰথমতে ডাঙৰৰ। ই এক কঠিন কাম-সকলোৰে বাবে নহয়। কাৰণ ইয়াৰ বাবে নিজে সিহঁতৰ পৃথিৱীলৈ নামি অহাৰ প্ৰয়োজন হয়। সেই কামটোৱেই এখেতে কৰিছিল। শিশুৰ বাবে যেতিয়া তেখেতে লিখে, তেতিয়া মোৰ এজন অভিজ্ঞতা লব্ধ শিশু যেনেই বোধ হয়।' সচাঁ কথা, শিশুৰ দৰে কোমল আৰু নিস্পাপ মন এটা এখুদ ককাইদেৰে কঢ়িয়াই লৈ নুফুৰাহেঁতেন তেন্তে এই মহৎ সৃষ্টি সমূহৰ পৰা অসমীয়া পাঠক সমাজ বঞ্চিত হব লগা হ'লহেঁতেন।

১৯৪৮ চনত বিৰিঞ্চি কুমাৰ বৰুৱাই সম্পাদনা কৰা 'ৰংঘৰ' আলোচনীখনৰ জৰিয়তে কবি নৱকান্ত বৰুৱাই 'এখুদ ককাইদেউ' ছদ্ম নামেৰে অসমীয়া শিশু সাহিত্যৰ জগতত প্ৰৱেশ কৰিছিল। শিশু সকলৰ সৈতে নৱকান্ত বৰুৱাই আত্মিক সম্বন্ধ গঢ়ি তোলাৰ বাবে কেতিয়াবা যদি আৰম্ভণিতে উল্লিখিত এখুদ ককাইদেউ হৈছে কেতিয়াবা আকৌ নতুন ককাইদেউ, সপোন ককাইদেউ আৰু ন-আইতাৰ ছদ্মৱেশী ৰূপ ধাৰণ কৰিব লগাও হৈছে। এই ক্ষেত্ৰত বৰুৱাই 'ন- আইতাৰ কথা' গ্ৰন্থখনৰ পাতনিত উল্লেখ কৰা কথাখিনি মনকৰিবলগীয়া- "শিশুৰ লগত উমলিবলৈ 'ভেশছন' কৰিবলগীয়া হয়। মোৰ ঘৰত মতা নামটোৰে এখুদ ককাইদেউ হ'লোঁ, এখুদ ভাইটি হ'লোঁ, এতিয়া এখুদ ককাও হৈ পৰিছোঁ। সপোন ককা নামেৰেও তাহানিৰ 'অসম বাতৰি' ত লিখিছিলোঁ। সেইবোৰ হেৰাল। ল'ৰা হৈ উপজি ছোৱালী হ'বৰো মন গ'ল। ময়ো ন-আইতা হৈ চাইছোঁ।"১(২০১০ঃ৩)

বিষয়বস্তুৰ আলোচনা ঃ

নৱকান্ত বৰুৱাই তেওঁৰ সমগ্ৰ শিশু সাহিত্যিক প্ৰাণৰ সাহিত্য আৰু জ্ঞানৰ সাহিত্য এই দুই অভিধাৰে অভিহিত কৰিছে। বীৰেন্দ্ৰ নাথ দত্তয়ো বৰুৱাৰ শিশু সাহিত্য সমগ্ৰক 'শিশু আৱৰ্তিত ৰচনা' আৰু 'শিশু আধাৰিত ভাবনা' এই দুই ভাগত বিভক্ত কৰিছে। শিশু আৱৰ্তিত ৰচনাক দত্তই আকৌ দুটা ভাগত ভাগ কৰিছে - এটা হৈছে শিশুলক্ষিত সমল আৰু আনটো হৈছে শিশু

কেন্দ্রিক সমল। যিখিনি ৰচনা বৰুৱাই শিশুক লক্ষ হিচাপে লৈ সৃষ্টি কৰিছে সেইখিনিয়েই হৈছে শিশু লক্ষিত সমল আৰু যিখিনি ৰচনাত কেন্দ্রীয় বিষয় হিচাপে শিশুৱেই স্থান পাইছে যদিও শিশুসকলক উদ্দেশ্য কৰি ৰচিত হোৱা নাই সেই খিনি হৈছে শিশুকেন্দ্রিক সমল। আনহাতে শিশু আলোচনীৰ সম্পাদনা, শিশু গ্রন্থ সমূহৰ পাতনিত লিখা টোকা, বাতৰি কাকতৰ শিশু শিতানৰ বাবে নিয়মীয়া লিখা আদিক 'শিশু আধাৰিত ভাবনা' ত অন্তর্ভুক্ত কৰা হৈছে।

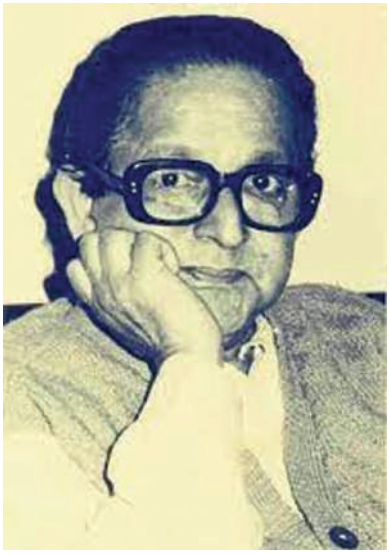

২০০৩ চনত নৰকান্ত বৰুৱাৰ বিভিন্ন ঠাইত সিচঁৰিত হৈ থকা শিশু সাহিত্য সমূহক একগোট কৰি অন্বেষাই 'নৰকান্ত বৰুৱা শিশু সাহিত্য সমগ্ৰ' নামেৰে প্রকাশ কৰিছে। খণ্ডটো সম্পাদনা কৰিছে গগনচন্দ্র অধিকাৰীয়ে। 'নৰকান্ত বৰুৱা শিশু সাহিত্য সমগ্ৰ' (প্রথম খণ্ড) ত বৰুৱাৰ শিশু সাহিত্য সমূহক মূলতঃ দুটা ভাগত বিভক্ত কৰা হৈছে। প্রথম ভাগত 'পদ্য পালে আওৰাওঁ', 'মোৰ কিতাপ', 'ওমলা ঘৰৰ পুথি', 'লগে-ভাগে গীত গাওঁ', 'কেৰেলুৱাৰ ৰে'ল', 'মনত পৰাৰ শব্দ' ন আইতাৰ কথা, জ্ঞানৰ সফুৰা গঢ়ো, শিয়ালী পালেগৈ ৰতনপুৰ আদি ইতিমধ্যে প্রকাশিত পুথিসমূহক অন্তর্ভূক্ত কৰা হৈছে। দ্বিতীয় ভাগটোৰ নাম দিয়া হৈছে 'লেছেৰি বোটোলা'। এই ভাগটোত পাঠ্যপুথিকে আদি কৰি বিভিন্ন ঠাইত সিচঁৰিত হৈ থকা ৰচনাসমূহক সন্নিবিষ্ট কৰা হৈছে। যেনে-'আমাৰ ভাৰতবর্ষ', 'সপোনাৰ লগৰীয়া', 'তপত ভাতৰ ধোঁৱা আৰু পইতা ভাতৰ ধোঁৱা', 'দুজন ৰজাৰ সাধু', 'শিলৰ চোলা' আদি।

নৰকান্ত বৰুৱাই তেওঁৰ ৰচনা সমূহৰ এঠাইত কৈছে 'মোৰ ক'বৰ মন যায়, 'চিৰকাল যেন উমলি ফুৰিম অজান শিশুৰ দৰে। পৃথিৱীৰ সর্বশিশু শিশুকৃষ্ণৰ প্রতি এয়া মোৰ নিঃকিন অনুৰাগৰ চিন।' নৰকান্ত বৰুৱাই শিশু সকলৰ প্রতি কঢ়িয়াই লৈ ফুৰা এনে তীব্র অনুৰাগ আৰু ভালপোৱা তেওঁ ৰচিত শিশু সাহিত্য সমূহৰ পৃষ্ঠাই পৃষ্ঠাই দোলা দি আছে। শিশুসকলৰ বাবে ৰচনা কৰা বৰুৱাৰ এনে কিছুমান কবিতা আছে যিবোৰ প্রজন্মৰ পিছত প্রজন্মই আওঁৰাইছে, কণ্ঠস্থ কৰিছে। এই কবিতা সমূহৰ স্মৃতি কেৱল শৈশৱ বা কৈশোৰতে শেষ হৈ নাযায়। এনে কবিতাসমূহক নিয়ৰিত তিতা শেৱালী অথবা বকুল পাহিৰ দৰে স্নিগ্ধ বুলি অভিহিত কৰিব পাৰি । যি চিৰ সুবাসিত, যাৰ আবেদন আজীৱন বিচাৰি পোৱা যায়। বৰুৱাৰ তেনে কিছুমান কবিতা হৈছে -- 'লঘোণ, খৰা শিয়ালৰ বিয়া, জিভা কেঁকুৰি আদি...

ৰৌ মাছ ভজা আছে? তাৰো দুচকল দে; এয়ে হ'ব লঘোনত আৰু একো নেলাগে।' -- লঘোণ

নৰকান্ত বৰুৱাৰ শিশু কবিতা সমূহৰ এটা প্রধান বিশেষত্ব হৈছে অবুজ আৰু অবোধ শিশুৰ কৌতুহলী আৰু জিজ্ঞাসু মনটোৰ সার্থক প্রকাশ। এই ক্ষেত্রত তেওঁৰ কবিতাত ব্যৱহাৰ হোৱা ছন্দ আৰু ভাষাৰ ভূমিকা বিশেষ গুৰুত্বপূর্ণ। কবিতাসমূহৰ ভাষা আৰু ৰুণুক জুনুক ছন্দই শিশুৰ লগতে প্রাপ্তবয়স্ককো লৈ যাব খোজে যান্ত্রিক অৱসাদৰ পৰা মুক্ত এখন ৰঙীন পৃথিৱীলৈ ---

"চোৱাচোন বাৰু আই
ৰুমী ভনীতিয়ে
উৰণীয়া তৰা
ক'তো হেনো দেখা নাই
সদায় সন্ধিয়া
শই শই আহি পথাৰ উপচি যায়,
কি যে বেঙী তাই ক'বকে নোৱাৰে
তথাপিতো দেখা নাই ৰুমি বৰ বেঙী ভাই।
- উৰণীয়া তৰা

অসমীয়া সমাজ জীৱনত সম্বন্ধ বাচক শব্দবোৰৰ এক বিশেষ গুৰুত্ব আৰু আদৰ আছে। আত্মিকতাৰ উমেৰে এই সম্বন্ধবাচক শব্দবোৰ উমাল। এই সম্বন্ধবাচক

শব্দবোৰৰ সঘন প্ৰয়োগেৰে নৱকান্ত বৰুৱাই শিশু সকলক চেনেহ জৰীৰে বান্ধিবলৈ চেষ্টা কৰিছিল-

"পেহী ঔ পেহা
আমলখি কেঁহা"
---- পেহী আৰু পেহা
"পেহা ?
ওঁহো নহয় মহা !
কাৱৈ লাঙি জালত লাগিল
পহু নহয় শহা।"
"মাহী গহপুৰৰ
মাহী অহাত মহাৰ তেনেই
লাগিল উখল-মাখল।"
-- মাহী আৰু মহা

শিশু সাহিত্যৰ প্ৰতিটো ক্ষেত্ৰলৈ নৱকান্ত বৰুৱাৰ অৱদান অবিস্মৰণীয়। শিশু কবিতা সমূহৰ দৰে শিশু নাটকো নৱকান্ত বৰুৱাৰ অনুপম সৃষ্টি। সাধাৰণতে বৰুৱাৰ নাটকসমূহত দেখা যায় তেওঁ গধুৰ বিষয়বস্তুকো শিশুৰ উপযোগীকৈ পাতলীয়া ভংগীৰে অতি সুন্দৰভাৱে উপস্থাপন কৰিছে। বৰুৱাই 'কেৰেলুৱাৰ ৰেল' নাটকখনৰ নিবেদনত উল্লেখ কৰিছে-- " নাটক কেইখন ঘাইকৈ পাতলীয়া -- 'ননচেন্স ৰাইম' ধৰণৰ। দুখনমানৰ বিষয়বস্তু গধুৰ কিন্তু ভংগী পাতলীয়া। শিকোৱাতকৈ আনন্দ দিয়া বা শিকাতকৈ নিৰ্দোষ আনন্দ পোৱাটোৱেই এই নাটকবোৰৰ উদ্দেশ্য।' 'কেৰেলুৱাৰ ৰে'ল, মনত পৰাৰ শব্দ, কাগজ কলমৰ ৰণ, গোলাপ আৰু বেলিফুল, মই টুনীয়ে টুনটুনালো আদি বৰুৱাৰ উল্লেখযোগ্য শিশু নাট্য। এই নাটক কেইখন শিশুক কেন্দ্ৰ কৰি ৰচিত হৈছে য'দিও শিশুৰ লগতে সকলো স্তৰৰ ব্যক্তিকে সমানে আমোদ দিবলৈ সক্ষম হৈছে।

বৰুৱাই শিশুসকলে যাতে শুদ্ধকৈ ভাষা জ্ঞান আহৰণ কৰিব পাৰে সেই সম্পৰ্কেও যথেষ্ট সচেতন আছিল। অসমীয়া স্বৰধনি আৰু ব্যঞ্জন ধ্বনিবোৰৰ সৈতে শিশুসকলক পৰিচয় কৰাই দিবলৈ বৰুৱাই যিদৰে 'মোৰ কিতাপ' শীৰ্ষক শিশু কবিতাৰ পুথিখন লেখিছিল ঠিক তেনেদৰে অসমীয়া আখৰবোৰ পৰিচয় কৰাই দিবলৈ সৰল শব্দ আৰু চুটি চুটি বাক্যৰে 'মাখনৰ কুকুৰা পোৱালী' শীৰ্ষক পুথিখন ৰচনা কৰিছিল। পুথিখনৰ 'তোমালোকলৈ চিঠি' অংশটোত বৰুৱাই লিখিছে -- "অসমীয়া আখৰ কেইটা

২০০৩ চনত নৱকান্ত বৰুৱাৰ বিভিন্ন ঠাইত সিচঁৰিত হৈ থকা শিশু সাহিত্য সমূহক একগোট কৰি অন্বেষাই 'নৱকান্ত বৰুৱা শিশু সাহিত্য সমগ্ৰ' নামেৰে প্ৰকাশ কৰিছে। খণ্ডটো সম্পাদনা কৰিছে গগনচন্দ্ৰ অধিকাৰীয়ে। 'নৱকান্ত বৰুৱা শিশু সাহিত্য সমগ্ৰ' (প্ৰথম খণ্ড) ত বৰুৱাৰ শিশু সাহিত্য সমূহক মূলতঃ দুটা ভাগত বিভক্ত কৰা হৈছে। প্ৰথম ভাগত 'পদ্য পালে আওৰাওঁ', 'মোৰ কিতাপ', 'ওমলা ঘৰৰ পুথি', 'লগে-ভাগে গীত গাওঁ', 'কেৰেলুৱাৰ ৰে'ল', 'মনত পৰাৰ শব্দ' ন আইতাৰ কথা, জ্ঞানৰ সফুৰা গঢ়ো, শিয়ালী পালেগৈ ৰতনপুৰ আদি ইতিমধ্যে প্ৰকাশিত পুথিসমূহক অন্তৰ্ভূক্ত কৰা হৈছে। দ্বিতীয় ভাগটোৰ নাম দিয়া হৈছে 'লেছেৰি বোটোলা'। এই ভাগটোত পাঠ্যপুথিকে আদি কৰি বিভিন্ন ঠাইত সিচঁৰিত হৈ থকা ৰচনাসমূহক সন্নিবিষ্ট কৰা হৈছে। যেনে-'আমাৰ ভাৰতবৰ্ষ', 'সপোনাৰ লগৰীয়া', 'তপত ভাতৰ ধোঁৱা আৰু পইতা ভাতৰ ধোঁৱা', 'দুজন ৰজাৰ সাধু', 'শিলৰ চোলা' আদি।

আৰু আ-কাৰ ই-কাৰ কেইডালৰ সৈতে তোমালোকৰ চিনাকি হ'লেনে ? যুটীয়া আখৰ শিকা নাই নেকি এতিয়াও ? যুটীয়া আখৰ ভালকৈ নেজানিলেও এই সাধু কেইটা পঢ়িব পাৰিবা, কাৰণ ইয়াত যুটীয়া আখৰ

নায়েই।”[২](২০১০ঃ১৫)

নৱকান্ত বৰুৱাৰ গল্প উপন্যাসধর্মী ৰচনা সমূহৰ ভিতৰত ‘শিয়ালী পালেগৈ ৰতনপুৰ’ বিশেষভাৱে উল্লেখযোগ্য। এইখন পুথিৰ বাবে বৰুৱাই ১৯৫৮ চনত ৰাষ্ট্রীয় পুৰস্কাৰ পাবলৈ সক্ষম হৈছিল। পুথিখনত বাস্তৱ জগতৰ সৈতে সাদৃশ্য নথকা কিছুমান অলৌকিক আৰু উদ্ভট কথা জোন নামৰ সৰু ল’ৰাটোৰ জৰিয়তে অৱতাৰণা কৰা হৈছে। এনে অলৌকিক কথাৰ জৰিয়তে লেখক বৰুৱাই শিশুৰ বাবে প্রয়োজনীয় বিভিন্ন কথাৰ সম্ভেদ দিছে। বৰুৱাৰ উল্লেখযোগ্য অন্যান্য গল্প উপন্যাস ধর্মী ৰচনা সমূহ হৈছে ‘আখৰৰ জখলা,’ ‘অংক-জংক পংক’, ‘মেজিক’, ‘প্রমাণী দৰৱ’, ‘কবিতাৰ দেশ’ ‘শব্দ নিৰুদ্দেশ’, ‘ৰক্ত বদন’, ‘ৰজা’ আদি।

হাঁহি ধেমালীৰ মাজেৰে শৈশৱ অতিক্রম কৰি এটি শিশু কৈশোৰ আৰু পৰৱর্তী সময়ত প্রাপ্তবয়স্ক হয়। জীৱনৰ এনে স্তৰ অতিক্রম কৰিবলৈ লোৱা এটি শিশুই যাতে জ্ঞানৰ সৈতে জড়িত গুৰুত্বপূর্ণ তথ্যসমূহ আয়ত্ব কৰিবলৈ নাপাহৰে সেই সম্পর্কেও বৰুৱা সচেতন আছিল। এই ক্ষেত্রত ‘নৱকান্ত বৰুৱা শিশু-সাহিত্য সমগ্র’ ৰ ‘জ্ঞানৰ সঁফুৰা গঢ়ো’ শিতানত অন্তর্ভূক্ত লেখনি সমূহ উল্লেখযোগ্য। ‘ভাষাই ভাষাই অনুকাৰ’ ‘ঠাইৰ নাম’, ‘কিতাপৰ খুচুৰা কথা’, ‘দিন কেতিয়া আৰম্ভ হয়’, ‘জৱাহৰলাল আৰু বন্দুক’, ‘দলিত আৰু অনুসূচিত’, ‘সপ্তস্বৰ’, ‘ঙ’ আৰু ং, ‘বুদ্ধ পূর্ণিমা’, ‘পাছপোর্ট আৰু ভিছা’ আদি প্রবন্ধ সদৃশ ৰচনা সমূহ কেৱল শিশুৰ বাবে নহয় প্রাপ্তবয়স্কৰ বাবেও সমানে গুৰুত্বপূর্ণ হৈ উঠিছে।

সামৰণি ঃ শিশুৰ সৰলতা আৰু হাঁহিৰ মাজত জীৱনৰ সবাতোকৈ সুন্দুৰ আৰু অপূর্ব দিশটো দেখা নৱকান্ত বৰুৱাৰ শিশু সাহিত্যৰ ক্ষেত্রখন বৰ বিশাল আৰু বর্ণাঢ্য। প্রতিটো স্তৰৰ শিশুৰ বাবে ৰচনা কৰা বৰুৱাৰ শিশু কৃতি সমূহ অসমীয়া শিশু সাহিত্যৰ ইতিহাসত একক আৰু অদ্বিতীয়। গগনচন্দ্র অধিকাৰীয়ে নৱকান্ত বৰুৱাৰ শিশু সাহিত্য সম্পর্কত সঠিকভাৱেই কৈছে— “ অসমীয়া শিশু সাহিত্যৰ বুৰঞ্জীত নৱকান্ত বৰুৱাই একমাত্র সাহিত্যিক, যি গৰাকীয়ে নিচুকনি গীত, বর্ণমালা পৰিচয় উচ্চাৰণ আৰু শব্দজ্ঞান আহৰণ উপাদানৰ পৰা আৰম্ভ কৰি জ্ঞান-বিজ্ঞানৰ জানিবলগীয়া সমস্ত কথা সামৰি, ভাব আৰু ভাষাৰ অপূর্ব সমন্বয়েৰে, পদ্য-গদ্য সাধুকথা-গীত নাটক আৰু উপন্যাসকে ধৰি আদি সাহিত্যৰ কেউটা বিভাগতে, প্রতিটো স্তৰৰ শিশুৰ উপযোগীকৈ সাহিত্য ৰচনা কৰি অসমীয়া শিশু-সাহিত্যক এক বিশাল বৈচিত্র্য আৰু মাত্রা প্রদান কৰি থৈ গৈছে। নৱকান্ত বৰুৱাৰ শিশু সাহিত্য সেইবাবেই অনন্য আৰু অতুলনীয় মহিমাৰে মহিমামণ্ডিত।”[৩](২০১০ঃ৬)

এখন সুস্থ আৰু প্রগতিশীল সমাজ গঢ়ি তোলাৰ বাবে শিশুসকলক সুস্থ মানসিকতাৰ অধিকাৰী হিচাপে গঢ়ি তোলাটো অতি প্রয়োজন। এই ক্ষেত্রত শিশু সাহিত্যৰ ভূমিকা বিশেষভাৱে গুৰুত্বপূর্ণ।

শিশুৰ মানসিক আৰু বৌদ্ধিক উৎকর্ষ সাধনাৰ বাবে আৰু শিশুসকলক মাতৃভাষাৰ প্রতি আগ্রহী কৰি তোলাৰ বাবে নৱকান্ত বৰুৱাই অসমীয়া শিশু সাহিত্যলৈ যি অৱদান আগবঢ়াই থৈ গ’ল সেয়া সচাঁই অবিস্মৰণীয় । ❑

প্রসংগ টোকা ঃ

১.অধিকাৰী, গগণ চন্দ্র (সম্পা) ঃ নৱকান্ত বৰুৱা শিশু সাহিত্য সমগ্র (প্রথম খণ্ড),

২.অধিকাৰী, গগণ চন্দ্র (সম্পা) ঃ নৱকান্ত বৰুৱা শিশু সাহিত্য সমগ্র (প্রথম খণ্ড)

৩.অধিকাৰী, গগণ চন্দ্র (সম্পা) ঃ নৱকান্ত বৰুৱা শিশু সাহিত্য সমগ্র (প্রথম খণ্ড)

গ্রন্থপঞ্জী ঃ

১.অধিকাৰী, গগণ চন্দ্র (সম্পা) ঃ নৱকান্ত বৰুৱা শিশু সাহিত্য সমগ্র (প্রথম খণ্ড)

গৱেষক ছাত্র, গুৱাহাটী বিশ্ববিদ্যালয়
আধুনিক ভাৰতীয় ভাষা আৰু সাহিত্য অধ্যয়ন বিভাগ,
ফোন-৮১৩৫০৮৬৭৩৭

ভাসৰ ‘স্বপ্নবাসৱদত্তা’ নাটকৰ প্ৰথম অংকত ব্যৱহৃত প্ৰাকৃত সম্ভাষণ ঃ এক অধ্যয়ন

✍ দীপামণি বৈশ্য

সংক্ষিপ্ত সাৰ ঃ

প্ৰাকৃত ভাষাৰ শিপা জনসাধাৰণৰ ব্যক্তবাণীৰ সৈতে জড়িত। আদি মানৱৰ প্ৰথম ‘কথা’ই প্ৰাকৃত অৰ্থাৎ ভাষাৰ প্ৰথম অৱস্থা বুলি ক’লে ক’ব পাৰি। দ্বিতীয়তে ক’ব পাৰি মানুহৰ উৎপত্তিৰ লগে লগে পৃথিৱীত প্ৰাকৃতিক ভাৱে প্ৰাকৃত ভাষাৰো উৎপত্তি হৈছিল। অৱশ্যে আজি আমি যিবোৰক প্ৰাকৃত ভাষা নামেৰে জানো বা বুজো, তাৰ সম্বন্ধ ভাৰতীয় আৰ্যভাষাৰ পৰিয়ালৰ সৈতে জড়িত, যাৰ প্ৰাচীনতম স্বৰূপ স্বগ্‌বেদত পোৱা যায়। ‘প্ৰাকৃত’ শব্দটোৱে বহল ভাৱে মধ্যভাৰতীয় আৰ্যভাষাক বুজালেও ই আচলতে মধ্যভাৰতীয় আৰ্যভাষাৰ দ্বিতীয় স্তৰটোকে (খ্ৰীষ্টাব্দ প্ৰথম শতাব্দী — খ্ৰীষ্টাব্দ ষষ্ঠ শতাব্দী) বৈদিক সংস্কৃত, সংস্কৃতৰ সমান্তৰাল ভাবে ভাৰতবৰ্ষত ব্যৱহাত হৈ থকা এই প্ৰাকৃত ভাষাই সময়ত সাহিত্যতো স্থান পালে। কবি ভাসৰ নাটকতো প্ৰাকৃত ভাষাৰ ব্যৱহাৰ যথেষ্ঠ পৰিমাণে পোৱা যায়। তেওঁৰ তেৰখন নাটকতে চৰিত্ৰভেদে বিভিন্ন প্ৰাকৃতৰ ব্যৱহাৰ হোৱা পৰিলক্ষিত হৈছে। এই আলোচনাত ভাসৰ নাটকত ব্যৱহাৰ হোৱা বিভিন্ন প্ৰকাৰৰ প্ৰাকৃত ভাষাৰ ব্যৱহাৰ কেনেদৰে হৈছে সেই সম্পৰ্কত বিশেষ গুৰুত্ব দিবৰ প্ৰয়াস কৰা হৈছে।

সূচক শব্দ ঃ প্ৰাকৃত, ভাস, নাটক, স্বপ্নবাসৱদত্তা

০.০০ অৱতৰণিকা ঃ

ভাৰতীয় আৰ্য ভাষা, মূল ইণ্ডো- ইউৰোপীয় ভাষাৰ অন্তৰ্গত এটি ভাষা। ভাৰতবৰ্ষত আৰ্য আগমনৰ সময়ৰ পৰাই এই ভাষাৰ আৰম্ভ হয়। আৰ্যসকলৰ অনন্য অসাধাৰণ সম্বল আছিল তেওঁলোকৰ শক্তিশালী ভাষা আৰু উচ্চ শ্ৰেণীৰ দেৱগীতমূলক সাহিত্য। আৰ্য আগমনৰ সময়ৰ আগত আৰু ভাৰতবৰ্ষত স্থিতি লোৱাৰ পাছত ৰচনা কৰা ঋগ্‌বেদ তথা পৰৱৰ্তী বাকী তিনিখন বেদৰ ভাষা বৈদিক হিচাপে স্বীকৃত হ’ল। বৈদিক ভাষা সৰলীকৃত হৈ সংস্কৃত হ’ল। পাণিনিকে প্ৰমুখ্য কৰি বৈয়াকৰণসকলে পৰৱৰ্তী বৈদিক শিষ্ট ভাষাকে সংস্কৃত বুলি আখ্যা দিলে। বৈদিক আৰু সংস্কৃত অভিন্ন ভাষা বুলি ভবা হয় যদিও মৌলিকত্ব আৰু স্তৰভেদে দুয়োটা ভাষাৰ মাজত পাৰ্থক্য আছে। পৰৱৰ্তী পৰ্যায়ৰ ভাৰতীয় আৰ্য ভাষাসমূহৰ লগত সংস্কৃতৰহে মিল আছে। পিছত পৰ্যায়ত যুগবিশেষে সংস্কৃত ভাষা সৰলীকৃত হৈ, লৌকিক কথ্য ভাষাৰ সংমিশ্ৰণত পৰিবৰ্তিত হৈ সেই ৰূপৰ পৰাই আধুনিক ভাৰতীয় আৰ্যভাষাসমূহৰ জন্ম হৈছিল।

আৰ্য জনসমাজৰ মাজত প্ৰচলিত লৌকিক বা কথ্য ৰূপটো জনসাধাৰণৰ নিত্যদিনৰ বাক্‌-ব্যৱহাৰত পৰিৱৰ্তনৰ স্বাভাৱিক গতি প্ৰৱাহেৰে অগ্ৰসৰ হৈ ধ্বনিতত্ত্ব, ৰূপতত্ত্বৰ কিছুমান উল্লেখযোগ্য পৰিবৰ্ত্তনেৰে আত্মপ্ৰকাশ কৰিলে যে ই প্ৰাচীন ভাৰতীয় আৰ্য ভাষাৰ পৰা বহুখিনি আতৰি আহি পৃথক হৈ পৰিল। ধ্বনিতাত্ত্বিক আৰু ৰূপতাত্ত্বিক পৰিবৰ্তনৰ মাজেদি প্ৰাচীন ৰূপৰ পৰা ভাৰতীয় আৰ্যভাষাই যি সুকীয়া ৰূপ পৰিগ্ৰহ কৰিলে তাকেই ভাৰতীয় আৰ্য ভাষাৰ ক্ৰমবিকাশৰ দ্বিতীয় স্তৰ তথা মধ্যস্তৰ হিচাপে মধ্যভাৰতীয় আৰ্যভাষা নামকৰণ কৰা হয় আৰু এই স্তৰৰ

ভাষাকে সামগ্রিক ভাৱে ব্যাপক অর্থত 'প্রাকৃত' বুলি অভিহিত কৰা হয়।

০.০১ গৱেষণাৰ উদ্দেশ্য ঃ

প্রাকৃত সাহিত্যক্ষেত্রলৈ লক্ষ্য কৰিলে দেখা যায় যে খ্রীষ্টপূর্ব ষষ্ঠ শতাব্দীৰ পৰা খ্রীষ্টায় দশম শতাব্দীলৈকে সৰু সৰু বহুতো সাহিত্য ৰচিত হৈছে আৰু সেই ৰচনাৰাজিৰ মাজেৰে প্রাকৃত ভাষাৰ বিভিন্ন আঞ্চলিক ৰূপবোৰে বিকাশ লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হৈছে বা বিকশিত হৈছে। প্রাকৃত ভাষাৰ জনপ্রিয়তাৰ লগতে ইয়াৰ গ্রহণযোগ্যতালৈ দৃষ্টিৰাখি সংস্কৃত নাট্যকাৰসকলেও তেওঁলোকৰ নাটকত প্রাকৃত ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিবলৈ লৈছিল। সংস্কৃত নাট্যকাৰ ভাসো তাৰ ব্যতিক্রম নহয়। ভাসে তেওঁৰ নাটকসমূহত প্রাকৃত ভাষাৰ বিভিন্ন আঞ্চলিক ৰূপবোৰ নাটকীয় কোনবোৰ চৰিত্রৰ মুখত কেনেদৰে দিছিল আৰু তাৰ মাজেৰে তেওঁৰ নাটকৰ ভাষিক দিশে কি তাৎপর্য বহন কৰিছিল এই দিশসমূহৰ আলোচনাই পত্রখনিৰ উদ্দেশ্য।

০.০২ গৱেষণাৰ সমল ঃ

এই গৱেষণা পত্রখনি প্রস্তুত কৰোঁতে ভাসৰ 'স্বপ্নবাসবদত্তা (চন্দ্রশেখৰ উপাধ্যায় সম্পাদিত) নাটকখনক মূখ্যসমল হিচাপে লোৱা হৈছে আৰু গৌনসমল হিচাপে প্রাকৃত ভাষা আৰু সংস্কৃত নাটক সম্পর্কীয় বিভিন্ন গ্রন্থৰ লগতে আলোচনী পত্রিকাবোৰ সহায় লোৱা হৈছে।

০.০৩ গৱেষণাৰ পদ্ধতি ঃ

এই ক্ষুদ্র গৱেষণা পত্রখনি প্রস্তুত কৰোঁতে মূখ্যত বিশ্লেষণাত্মক পদ্ধতি অৱলম্বন কৰা হৈছে যদিও বিষয়বস্তুটো স্পষ্টৰূপত প্রতিষ্ঠা কৰাৰ তাগিদাত প্রয়োজন সাপেক্ষে বর্ণনাত্মক পদ্ধতিৰোৰ সহায় লোৱা হৈছে।

০.০৪ গবেষণাৰ পৰিসৰ ঃ

সংস্কৃত নাট্য সাহিত্যত প্রাকৃত ভাষাৰ ব্যৱহাৰ বহুল। প্রায় প্রতিজন সংস্কৃত নাট্যকাৰে তেওঁলোকৰ নাটকত সংস্কৃত ভাষাৰ লগতে বিভিন্ন ধৰণৰ প্রাকৃত ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিছে। ইয়াৰ পৰিসৰ বৰ বিশাল। কিন্তু এই গবেষণাৰ বাবে নাট্যকাৰ ভাসৰ 'স্বপ্নবাসৱদত্তা' নাটকখনকহে নির্বাচন কৰা হৈছে। গতিকে গৱেষণা পত্রখনিৰ পৰিসৰো ভাসৰ উক্ত নাটকখনিত প্রাকৃত ভাষাৰ ব্যৱহাৰ কেনেদৰে হৈছে তাৰ আলোচনাৰ মাজতে সীমাবদ্ধ থাকিব।

২.০০ বিষয় বস্তুৰ আলোচনা ঃ

সংস্কৃত নাট্য সাহিত্যত প্রাকৃত ভাষাৰ প্রয়োগ ঃ

সংস্কৃত নাটকত প্রাকৃতৰ প্রয়োগৰ ঐতিহ্য অতি প্রাচীন খ্রীষ্টাব্দ প্রথম শতাব্দীতে এই পৰম্পৰা আৰম্ভ হয়। সংস্কৃত নাটকত প্রয়োগ কৰা প্রাকৃত অংশৰ জৰিয়তেই প্রাকৃত ভাষাই সর্বপ্রথম শিষ্ট ৰূপ লাভ কৰি সাহিত্যত প্রৱেশ কৰে আৰু সাহিত্যিক ভাষাৰূপে মর্যাদা লাভ কৰিবলৈ সক্ষম হয়। এতিয়ালৈকে প্রাপ্ত তথ্য মতে খ্রীষ্টাব্দ প্রথম শতাব্দীৰ বুলি অনুমান কৰা অশ্বঘোষেই প্রথম সংস্কৃত নাট্যকাৰ, যি গৰাকী নাট্যকাৰে প্রথম সংস্কৃত নাটকত প্রাকৃত ভাষা ব্যৱহাৰ কৰে। মধ্য-এচিয়াৰ তুৰফান অঞ্চলৰ পৰা উদ্ধাৰ কৰা তেওঁৰ 'সাৰিপুত্র-প্রকৰণ' নামৰ নাটকতে প্রাকৃতৰ প্রথম প্রয়োগ ঘটা দেখা যায়।[১] কথ্য প্রাকৃতৰ ধাৰা অনুধাবণ কৰিবৰ বাবে অশ্বঘোষৰ নাটকৰ প্রাকৃত অংশ ভাষাতাত্ত্বিক দৃষ্টিকোণৰ পৰা মূল্যবান।

জনসাধাৰণৰ ভাষাই প্রাকৃত ভাষা- বুলি অভিহিত কৰাৰ যি তাৎপর্য সি সার্থকভাবে বাস্তবায়িত হৈছে সংস্কৃত নাটকত প্রয়োগ কৰা প্রাকৃত অংশৰ জৰিয়তে। অশ্বঘোষৰ পৰৱর্তী ভাস, কালিদাস, ভৱভূতি, শ্রীহর্ষ, বিশাখদত্ত, শূদ্রক, ভট্টনাৰায়ণ, ক্ষেমীশ্বৰ প্রভৃতি নাট্যকাৰসকলে নাটকসমূহৰ বিভিন্ন চৰিত্রৰ মুখত বিভিন্ন প্রকাৰৰ প্রাকৃত প্রয়োগ কৰিছিল। সংস্কৃত নাট্যকাৰসকলে তেওঁলোকৰ নাটকসমূহত নাৰী, বিদূষক, নগৰ ৰক্ষী, বৌদ্ধভিক্ষু লগতে সমাজৰ নিম্নবিত্ত সাধাৰণ চৰিত্র যেনে-গাড়োৱান, চোৰাংচোৰা, দাস, সর্পজীৰী, মাছমৰীয়া, চণ্ডাল, চোৰ আদি বিভিন্ন চৰিত্রৰ মুখত বিভিন্ন প্রকাৰ প্রাকৃত প্রয়োগ কৰিছিল।

সংস্কৃত ভাষা সমাজৰ শিক্ষিত অভিজাত শ্রেণীৰ ভাষা বুলি বিবোচিত হোৱাত সাধাৰণ অশিক্ষিত শ্রেণীৰ মুখত সংস্কৃত ভাষা নিদি বিভিন্ন প্রাকৃত ব্যৱহাৰ কৰা হৈছিল। সংস্কৃত আলংকাৰিসকলে কোন চৰিত্রৰ মুখত কি প্রাকৃত দিব লাগে তাক নিদিষ্ট কৰি দিয়াৰ বহু পূর্বৰ পৰাই নাট্যকাৰসকলে স্বইচ্ছাৰে সাধাৰণ চৰিত্রৰ মুখত বিভিন্ন প্রাকৃতৰ কৰিছিল।[২]

সংস্কৃত সাহিত্য আছিল এক সভ্রান্ত মননশীলতাৰ প্রতিফলন। ইয়াৰ বৈশিষ্ট্য হিচাপে দেখা দিছিল কবিত্বপূর্ণ দীর্ঘ বর্ণনা, বৈদগ্ধপূর্ণ প্রকশিকা শক্তি, চিত্রধর্মিতা, অলংকাৰ উপমাৰ ব্যৱহাৰ। সংস্কৃত নাটকৰ নায়ক সাধাৰণতে উচ্চবংশীয় আৰু সংস্কৃতিবান পুৰুষ — তেওঁ প্রধানত

প্রেমিক হয়। কিন্তু নাটকীয় প্রয়োজনত দেখুৱাব লগা সাধাৰণ চৰিত্ৰৰ মুখত সংস্কৃত সংলাপে শোভা পাব নোৱাৰে। সেয়ে চৰিত্রানুযায়ী বিভিন্ন প্রাকৃত ব্যৱহাৰৰ নীতি প্রবর্তন হৈছিল। সমাজত নাৰীৰ স্থানো বহুক্ষেত্রত অবহেলিত, অবজ্ঞাত আৰু অধিকাৰৰ ক্ষেত্রতো কিছু পৰিমাণে সংকুচিত আছিল কাৰণেই নাৰী চৰিত্রৰ মুখত সংস্কৃত ভাষা দিয়া নাছিল, প্রাকৃত ভাষাহে দিছিল।

সংস্কৃত নাটকসমূহ যিদৰে ৰজাঘৰীয়া বা অভিজ্ঞাত সম্প্রদায়ৰ পৃষ্ঠপোষকতা আৰু অনুপ্রেৰণাত সৃষ্টি হৈছিল তেনেদৰে নাট্যকাৰসকলো আছিল সমাজৰ উচ্চস্তৰত আৰোহিত শিক্ষা-দীক্ষা, জ্ঞান-গৰিমাৰে পূর্ণ সংস্কৃতিবান ব্যক্তি। তেওঁলোকে উচ্চ জীৱনবোধ বা আদর্শৰ চিন্তাৰে ভাৱ প্রধান বা ৰস প্রধান সাহিত্য সৃষ্টিতহে অধিক মনোনিবেশ কৰিছিল- য'ত অনুভূতিৰ জ্ঞান-গভীৰ অনুভৱ, স্বকীয় প্রতিভা আর্জিত উক্তি বৈচিত্র্য, প্রকাশ নৈপুণ্য উদ্ভাসিত কৰিবলৈ বিচৰা হৈছিল। শ্রমক্লান্ত সাধাৰণ মানুহৰ জীৱন-কাহিনী সংস্কৃত নাটকৰ বিষয়বস্তু হব পৰা নাছিল। কাহিনীৰ প্রয়োজনত বা হাস্য কৌতুক সৃষ্টিৰ কাৰণে সাধাৰণ মানুহৰ বিচিত্র জীৱনধাৰণ যি সামান্য উপস্থিতি পোৱা গৈছে, সেই খিনি প্রাকৃত - ভাষাৰ মাজেদিহে পোৱা গৈছে। সেয়ে সংস্কৃত নাটকৰ প্রাকৃত অংশ প্রাচীন ভাৰতীয় সমাজ-জীৱন আৰু মধ্যযুগত প্রচলিত ভাৰতীয় আর্য ভাষাৰ বিভিন্ন আঞ্চলিক ৰূপ অধ্যয়নৰ বাবে গুৰুত্বপূর্ণ বুলি বিবেচিত হৈছে।

ভাসৰ নাট্যকলাৰ এটা মহত্বপূর্ণ দিশ হৈছে তেওঁৰ নাটকৰ চৰিত্র চিত্রণ। ভাসে সকলো প্রকাৰৰ চৰিত্র বৰ কুশলতাৰে তেওঁৰ নাটসমূহত চিত্রিত কৰিছে। ধীৰোদাও নায়ক, নায়িকা, দৈবী, আসুৰিক আদি যিমান প্রকাৰৰ চৰিত্র পোৱা যায়, ভাসৰ নাটকত এই সকলোবোৰ চৰিত্রই স্বমহিমাৰে উদ্ভাসিত হোৱা দেখা যায়। এই ক্ষেত্রত তেওঁৰ 'স্বপ্নবাসৱদত্তা' নাটকখনো ব্যতিক্রম নহয়। এই নাটকখনত মুঠ ওঠৰ (১৮) টা চৰিত্রৰ সমাবেশ ঘটিছে- ইয়াৰে ন (৯) টা পুৰুষ আৰু ন (৯) টা নাৰী চৰিত্র। এই নাটকখনৰ মূল চৰিত্রকেইটি হ'ল- বাসৱদত্তা, পদ্মাৱতী, ৰজা উদয়ন আৰু যৌগন্ধৰায়ণ। নাটকখনৰ প্রথম অংকত মূল নাৰী চৰিত্র বাসৱদত্তা আৰু পদ্মাৱতীৰ লগতে পুৰুষ চৰিত্র যৌগন্ধৰায়ণণে বিশেষ ভূমিকা গ্রহণ কৰা দেখা গৈছে।

আনহাতে ব্রহ্মচাৰীৰ চৰিত্রটোৱে এই আকটিত বিশেষ তাৎপর্য বহন কৰিছে। এই অংকত উপস্থিত সকলো চৰিত্রৰ মানসিক জগতত ৰেখাপাত কৰা এই চৰিত্রটোৰ সৃষ্টি আৰু সমাবেশ ভাসৰ চৰিত্র সৃষ্টিৰ কুশলতাক প্রতিপন্ন কৰে।

বাসৱদত্তা ঃ 'স্বপ্নবাসৱদত্তা' এই নাটকখনৰ মূল নাৰী চৰিত্র তথা নাটকখনৰ নায়িকা। তেওঁ উজ্জয়িনীৰ ৰজা প্রদ্যোৎ মহাসেনৰ উদয়নে বিবাহৰ পূর্বে বাসৱদত্তাক পলুৱাই নিছিল। তৎকালিন সমাজত ক্ষত্রিয়সকলৰ মাজত পলুৱাই নি বিবাহ কার্য সম্পন্ন কৰা প্রথাক অনুচিত বা অবৈধ বুলি বিবেচনা কৰা নহৈছিল। নাটকখনৰ নায়ক উদয়নে নায়িকাৰূপী প্রেমিকা বাসৱদত্তাক পুৱাই নি গর্ন্ধৰ প্রথাত বিবাহ কার্য সম্পাদন কৰিছিল। নায়িকা বাসৱদত্তাই নিজৰ উচ্চ বংশ মর্যদাক লৈ গৌৰৱান্বিত আছিল। নাটকৰ আৰম্ভনিতে তপোৱন আশ্রমৰ ভিতৰত ৰাজপুৰুষসকলে মানুহক বিতাড়ণ কৰা দেখি বাসৱদত্তাই মনৰ খেদ প্রকাশ কৰিছিল 'তথা পৰিশ্রমঃ পৰিখেদং নোৎপাদয়তি যথাৎয়াং পৰিভৱঃ।' অর্থাৎ এনেকুৱা অপমানে যি কষ্ট দিয়ে, পৰিশ্রমে কিন্তু মনত কোনো কষ্ট নোপোজায়। তেওঁ চিনাকী-অচিনাকী যিয়েই হওঁক, নিজৰ সদৃশ আনক দেখি প্রসন্নতা প্রকাশ কৰিছে। পদ্মাৱতীক দেখাৰ পিছত বাসৱদত্তাৰ অন্তৰত হিংসা-বিদ্বেষৰ ভাৱ অহা নাই, বৰং- তেওঁৰ মনত মৰম-স্নেহৰ ভাৱহে উদ্রেক হৈছে। বাসৱদত্তা এগৰাকী সতী-নাৰী, অন্তৰত স্বামীৰ প্রতি অফুৰন্ত প্রেম আৰু শ্রদ্ধাভাৱ আছে। সেয়ে তেওঁ পৰপুৰুষৰ মুখলৈকো চাব নোখোজে। তপোবনত ব্রহ্মচাৰী প্রৱেশ কৰাত তেওঁ অপ্রস্তততৈ লজ্জা প্রকাশ কৰিছে। তেনেদৰে তেওঁৰ নিজৰ দেশৰ প্রতিয়ো অগাধ প্রেম-ভালপোৱা আছিল বুলি ক'ব পাৰি, কাৰণ তেওঁ যেতিয়া ৰাজ্য উদ্ধাৰৰ বাবে মগধৰাজৰ সৈতে মিত্রতা কৰা আৱশ্যক বুলি কৈ প্রয়োজন হ'লে পদ্মাৱতীৰ সৈতে স্বামী উদয়নৰ বিবাহৰ বাবেও মান্তি হৈছিল। পদ্মাৱতীক ৰজাৰ সৈতে একান্তভাৱে মিলিত হ'বলৈ সুযোগ কৰি দিছিল। সতিনী-পদ্মাৱতীৰ অসুস্থতাৰ বাতৰি পাই বাসৱদত্তা চিন্তিত হৈ পৰাও দেখা গৈছে। কবি ভাসে বাসৱদত্তাক আদর্শ নাৰী ৰূপত অংকণ কৰিছে।

পদ্মাৱতী ঃ মগধৰ ৰজা দর্শকৰ ভগ্নী-পদ্মাৱতী। অতীব সুন্দৰী পদ্মাৱতীক বাসৱদত্তাও তেওঁৰ ৰূপৰ প্রসংশা কৰিছিল। কম বয়সীমা হোৱা স্বত্তেও পদ্মাৱতী সাংসাৰিক জ্ঞানপুষ্ঠ আছিল, কাৰণ তেওঁ চিনাকী আৰু অচিনাকী

যৌগন্ধৰায়ণ হাস্যৰসিকো আছিল। নাটকৰ শেহত ৰজাৰ আগত তেওঁ ব্ৰাহ্মণৰ বেশত উপস্থিত হৈছিল। পদ্মাৱতীৰ মাজত তেওঁ নিজ ভগ্নীৰ সন্ধান ক�ৰিছিল। তেওঁ ৰজা উদয়নৰ নিজৰ পূৰ্ব পুৰুষসকলৰ কথা মনত ৰাখি ৰাজধৰ্ম পালন কাৰ যাবলৈ সততে উপদেশ দি আছিল। প্ৰকৃতাৰ্থত যৌগন্ধৰায়ণ ৰজাৰ মন্ত্ৰী হিচাপে এগৰাকী সাৰ্থক আৰু উপযুক্ত বুলি নিজক প্ৰতিষ্ঠা কৰিব পাৰিছিল তেওঁৰ কাৰ্যই সেই কথাই প্ৰমাণ কৰে।

পৰপুৰুষৰ সৈতে কিদৰে মিলামিছা কৰিব লাগে, নিজকে কেনেকৈ বচাই চলিব লাগে জানিছিল। তীক্ষ্ম বুদ্ধিসম্পনা পদ্মাৱতীয়ে যিকোনো কথাৰ ৰহস্য শীঘ্ৰে ভেদ কৰিব পাৰিছিল। উপস্থিত বুদ্ধিৰে যিকোনো পৰিস্থিতি চম্ভালি ল'ব জানিছিল পদ্মাৱতীয়ে। বৃদ্ধ আৰু নিঃকিনজনৰ প্ৰতি তেওঁ যথেষ্ট সহানুভূতিশীল আছিল, কাৰণ তপোৱনত উপস্থিত হৈয়েই তেওঁ বৃদ্ধা তাপসীকলক নমস্কাৰ জনাইছিল আৰু লগতে প্ৰয়োজন সাপেক্ষে যাক যি লাগে তেওঁৰ ওচৰত বিচাৰিলৈ কৈছিল। ব্ৰহ্মচাৰীৰ মুখত অগ্নিদগ্ধা বাসৱদত্তা আৰু মূৰ্ছিত ৰজা উদয়নৰ কথা শুনি বৰ বিচলিত হৈ পৰিছিল। ইয়াৰ পৰা অনুমেয় যে পদ্মাৱতীয়ে তেওঁলোকৰ প্ৰতি সততে দয়া আৰু প্ৰেমভাৱ ৰাখিছিল। বাসৱদত্তাৰ দৰেই পদ্মাৱতীৰ মনতো ৰজাৰ প্ৰতি গভীৰ প্ৰেম আছিল। বাসৱদত্তা উদাৰ সতিনী হোৱা স্বত্তেও কেতিয়াবা কেতিয়াবা তেওঁৰ মনতো ঈৰ্ষাৰ ভাৱ উৎপন্ন হৈছিল, কিন্তু পদ্মাৱতীৰ চৰিত্ৰত কত কেতিয়াও ঈৰ্ষা দৃষ্টিগোচৰ হোৱা নাই। পদ্মাৱতীয়ে বাসৱদত্তাৰ পিতৃ-মাতৃকো উপযুক্ত সন্মান প্ৰদৰ্শন কৰিছে। এই চৰিত্ৰটো ভাৰতীয় নাৰীৰ বাবে আদৰ্শনীয় চৰিত্ৰ।

যৌগন্ধৰায়ণ ঃ যৌগন্ধৰায়ণ বৎসৰাজ উদয়নৰ প্ৰধানমন্ত্ৰী। এই চৰিত্ৰটো আটাইতকৈ আৰ্কষণীয় দিশটো হ'ল যৌগন্ধৰায়ণৰ স্বামীভক্তি। তেওঁ, তেওঁৰ স্বামী তথা ৰজাৰ পৰা নিজকে পৃথক কৰি কোনো কথাই ভবা নাছিল। ৰজাৰ হিতে নিজৰ আৰু ৰজাৰ অহিতত নিজকে অহিত জ্ঞান কৰিছিল। তেওঁ ৰজাৰ মংগলৰ বাবে সততে চিন্তিত আৰু প্ৰয়ত্নশীল তথা সষ্টম হৈ আছিল। ৰজা উদয়নৰ হেৰোৱা ৰাজ্য উদ্ধাৰৰ বাবে তেওঁ দিন-ৰাতি একাকাৰ কৰি দিছিল। তেওঁ সমস্ত বৎসদেশত অকল ৰজা উদয়নৰে শাসন বাহাল থকাটো বিচাৰিছিল। ৰজা উদয়নৰ সৈতে পদ্মাৱতীৰ বিবাহো যৌগন্ধৰায়ণৰ বাবেই সম্ভৱ হৈ উঠিছিল। ৰজাৰ হিতৈষী আৰু প্ৰিয় হোৱাৰ পিছতো তেওঁৰ চৰিত্ৰৰ কত অহং ভাৱৰ লেখ পোৱা নাযায়। তেওঁ আনৰ মোল বুজিছিল, স্থান-কাল-পাত্ৰভেদে তেওঁ উপযুক্ত সম্মান প্ৰদৰ্শন কৰিছিল আৰু প্ৰশংসাও কৰিছিল। যৌগন্ধৰায়ণ হাস্যৰসিকো আছিল। নাটকৰ শেহত ৰজাৰ আগত তেওঁ ব্ৰাহ্মণৰ বেশত উপস্থিত হৈছিল। পদ্মাৱতীৰ মাজত তেওঁ নিজ ভগ্নীৰ সন্ধান কৰিছিল। তেওঁ ৰজা উদয়নৰ নিজৰ পূৰ্ব পুৰুষসকলৰ কথা মনত ৰাখি ৰাজধৰ্ম পালন কাৰ যাবলৈ সততে উপদেশ দি আছিল। প্ৰকৃতাৰ্থত যৌগন্ধৰায়ণ ৰজাৰ মন্ত্ৰী হিচাপে এগৰাকী সাৰ্থক আৰু উপযুক্ত বুলি নিজক প্ৰতিষ্ঠা কৰিব পাৰিছিল তেওঁৰ কাৰ্যই সেই কথাই প্ৰমাণ কৰে।

'স্বপ্নবাসৱদত্তা' নাটকৰ প্ৰথম অংকত সন্যাসীৰ বেশধাৰী যৌগন্ধৰায়ণ আৰু অৱন্তিকা বেশধাৰিণী বাসৱদত্তাৰ প্ৰৱেশ ঘটা দেখা যায়—

বাসৱদত্তা যৌগন্ধৰায়ণক উদ্দেশ্যি-

বাসৱদত্তা ঃ অয্যঙ্গ কো এসো উস্সাৱেদি (প্ৰাঃ)

(আৰ্য, এই জন কোননো লোকক আতঁৰাইছে)

যৌগন্ধৰায়ণ ঃ ভৱতিঙ্গ যো ধৰ্মাদাত্মামুস্তাৱয়তি।

(দেৱী, যিজনে নিজকে ধৰ্মৰ পৰা আতঁৰাইছে, (তেওঁ)।)

বাসৱদত্তা ঃ অয্যঙ্গ ণ হি এববং বস্তকামা, অহং বি ণাম উস্সাৰইদব্বা হোমি ত্তি। (প্ৰাঃ)

(আৰ্য, মই কোৱাৰ আশয় সেয়া নহয় ? অন্ততঃ মই নিজকে আঁতৰাই পঠিয়াবলগীয়া নহয় বুলি বিবেচনা কৰোঁ)

যৌগন্ধৰয়াণ ঃ ভৰতিঙ্গ এবমনির্জ্ঞাতানি দেৱতান্যধবুয়ন্তে (সং)

(এনেদৰে অজ্ঞাত দেৱতাও তিৰস্কৃত হয়)

বাসৱদত্তা ঃ অয্যঙ্গ তহ পৰিস্সমো পৰিখেদং উপ্পাদেদি, জহ অঅং পৰিভবো। (প্রাঃ)

(আর্য, এনেকুৰা অপমানে যিখিনি কষ্ট দিয়ে পৰিশ্রমে কিন্তু তেনে কষ্ট নোপজায়।)

যৌগন্ধৰায়ণ ঃ ভুক্তোজ্ঝিত এষ বিষয়োত্র ভৰত্যা। পাত্র চিন্তা কার্যা। (সঃ)

(আপুনিও এনে বিষয় (বিভৱ) আগতে ভোগকৰি এৰিছে, এয়া চিন্তনীয় বিষয় নহয়)

ভট (ৰক্ষীদ্বয়) ঃ উস্সৰহ অয্যাঙ্গ উস্সৰহ। (প্রাঃ)

(আর্যসকল, আঁতৰি দিব, আঁতৰি দিব।)

কাঞ্চুকীয় ঃ সম্ভষকঙ্গ ন খলু ন খলুত্সাৰণা কার্যা।

(সম্ভষক, নহয় নহয় এনেদৰে লোকক আঁতৰোৱা উচিত নহয়।)

উভয়ে ঃ অয্যঙ্গ তহ।। (প্রাঃ)

(আর্য, ভাল বাৰু)

যৌগন্ধৰাষণ ঃ হন্ত সবিজ্ঞানমস্য দর্শনম। বত্সে।

উপসর্গা বস্তাবদেনম্। (সং)

(এৰা, এওঁক বিচাৰ বুদ্ধি সম্পন্ন লোক যেন দেখিছোঁ।

আইদেই, এইজনৰ ওচৰ চাপক)

বাসৱদত্তা ঃ অয্যঙ্গ তহ।। (প্রাঃ)

(আর্য, সেয়ে হওক বাৰু)

(ভাস কে নাটক, ভাগ III পৃঃ ১০৭-১০৯)

বাসৱদত্তা ঃ ৰাঅ দাৰি অত্তি সুনিও ভাইনিআ সিণোহো বি মে এথ সম্পজ্জই। (প্রাঃ)

(ৰাজ কুমাৰী বুলি কোৱা শুনি তেওঁৰ প্রতি মোৰ মনত ভগিনীসুলভ চেনেহৰ ভাব হৈছে।)

চেটী ঃ এদু এদু ভাট্টদাৰিআ, ইদং অস্সমপদং পবিসদু। (প্রাঃ)

(আহক, ৰাজকুৱৰী আহক। এই আশ্রমত সোমাওক।)

তাপসী ঃ সাঅদং ৰাঅদাৰিআও। (প্রাঃ)

(ৰাজকুঁৱৰী ওলগ জনাইছো)

বাসৱদত্তা ঃ (স্বাগতম) ইঅং সা ৰাঅদাৰিআ। অভিজনাপুৰুবং খু সে ৰুবং। (প্রাঃ)

(স্বাগতম, এইজনীয়েই সেই ৰাজকুঁৱৰী। বংশমর্যাদা

সেই সময়ত সংস্কৃত আৰু লৌকিক সংস্কৃত অর্থাৎ প্রাকৃত উভয়ৰে ব্যৱহাৰ আছিল। সংস্কৃত ভাষীসকলেও সমসাময়িক ব্যৱহাৰিক সমাজ জীৱনত মিলি চলিবৰ বাবে প্রাকৃত ভাষা আয়ত্ব কৰিছিল। ইপিনে সাধাৰণ শ্রেণীৰ নাগৰিকসকলৰ প্রত্যেকেই সংস্কাৰিত সংস্কৃত ভাষা জনাটো হয়তো সম্ভৱ নাছিল বা বহুক্ষেত্রত তেওঁলোকৰ প্রয়োজনো নাছিল। তেওঁলোকৰ দৈনন্দিন জীৱনটো সুচাৰুৰূপে চলাই নিবলৈ প্রাকৃত ভাষাটোৱে যথেষ্ট আছিল। ইয়াৰ পৰা এটা কথা ক'ব পাৰি যে প্রত্যেকে যদি নিজৰ ভাষিক পৰিবেশক লৈ সচেষ্ট হৈ থাকে তেন্তে বহু ভাষা বিপন্ন হোৱাৰ পৰা ৰক্ষা পৰিলেহেঁতেন। দেখা যায় যে বহু প্রান্তীয় ভাষা, লোকভাষা ব্যৱহাৰ বর্জিত হোৱাৰ বাবেই ক্রমে ক্রমে হেৰাই যোৱাৰ উপক্রম হয় আৰু সময়ত গৈ লুপ্ত প্রায় হৈ যায়।

অনুসৰি এওঁ ৰূপহী)

পদ্মাৱতী ঃ অয্যেঙ্গ বন্দামি। (প্রাঃ)

(আর্য়ে। আপোনাক সেৱা জনাইছোঁ)

তাপসী ঃ চিৰং জীৱ। পবিস জাদেঙ্গ পবিস। তবোবণানি পাম অদি হিজনস্স সঅগেহং। (প্রাঃ)

(চিৰকাল জীয়াই থাকা, আই সোমাই আহা। তপোবন সকলো অতিথিৰ আপোন ঘৰ)

পদ্মাৱতী ঃ ভোদু ভোদু। অয্যেঙ্গ বিস্সস্থামহি। ইমিণা বহুমানব-অণেম অনুগ্গহিদমহি। (প্রাঃ)

(ভাল, আর্যে। এতিয়া মই নিশ্চিত হৈছোঁ। আপোনাৰ আদৰণি ওলগেৰে মই অনুগৃহিতা হৈছে।)

(ভাস কে নাটক, ভাগ পৃঃ III ১১০)

বাসৱদত্তা ঃ (আত্মগতম) ভোদু ভোদুঙ্গ এসা অ

অত্তণীআ দাণি সংবৃত্তা। (প্রাঃ)

(নিজক নিজে -হয়, হয়। এতিয়া এইজনী মোৰ আত্মীয়া হৈ পৰিল।)

তাপসী ঃ অর্হা খু আইদী ইমস্‌স বহুমাস্‌স। উভআণি ৰাঅউত্বাণি মহত্তৰাণি ত্তি সুণীঅদি (প্রাঃ)

(এনে ৰূপহীজনী তেনে সন্মানৰ বাবে উপযুক্তা। দুয়োটা ৰাজবংশ বৰ উচ্চস্তৰৰ বুলি শুনি আছো।)

পদ্মাৱতী ঃ অয্যঙ্গ কি দিটঠো মুনিজনও অত্তাণং অনুপ্পহীদুং। অভিপ্পেদপ্পদানেন তবস্সিজনো উবনিমন্তীঅদু দাব কো কি এথ ইচ্ছদি ত্তি। (প্রাঃ)

(আর্য, ইয়াত এনে কোনোৱা মুনিজন আছে নে যিজনে মোক অনুগৃহিতা কৰিব। যি বস্তুকে তেওঁ বিচাৰে তাকে পাব বুলি মুনিসকলক সুধি চাওকচোন কাৰোবাক কিবা লাগেনে?)

কাঞ্চুকীয় ঃ যদভিপ্রেতৎ ভবত্যা। ভো ভো আশ্রমবাসিনস্তপস্বিনঃ। শৃন্বন্তু শৃন্বন্তু ভবন্তঃ। (সং)

(আইদেউ, আপোনাৰ যেনে ইচ্ছা তাকে কৰোঁ।)

(ভাস কে নাটক, ভাগ III পৃঃ ১১২)

কাঞ্চুকীয় ঃ ভোঃ কি ক্রিয়তাম্‌ (সং)

(তেনেহ'লে আপুনি কি বিচাৰে)

যৌগন্ধৰায়ন ঃ ইয়ং মে স্বসা। (প্রাষিত ভতৃকা-মিমামিচ্ছাম্যত্র ভবত্যা কঞ্জিত কালং পৰিপাল্যমানাম। (সং)

এইজনী মোৰ ভনী। ভনীৰ স্বামী বিদেশত আছে। সেয়ে ভনীজনীৰ কিছুদিন এই ৰাজকুমাৰীয়ে পালন কৰাটো বিচাৰিছোঁ।

(ভাস কে নাটক, ভাস III পৃঃ ১১২)

বাসৱদত্তা ঃ (আত্মগতং) হং। ইহ মংনিক্‌খিবিদুকামো অয্যজোঅন্ধৰাঅণো। হোদু অবিআৰিঅ কমং ণ কৰিস্সদি। (প্রাঃ)

(মনে মনে, হায়ঙ্গ আর্য যৌগন্ধৰায়ণে এতিয়া এওঁৰ হাততে মোক অর্পন কৰি যাব খোজে। হওঁক বাৰু বিচাৰ বিবেচনা নকৰাকৈ তেওঁ কোনো কাম নকৰে।)

কাঞ্চুকীয় ঃ ভবতিঙ্গ মহতি স্বল্বস্য ব্যাপাস্রয়ণা। কথং প্রতিজানীমঃ। (সং)

(এখেতে কৰা আশ্রয় প্রার্থনা বৰ ডাঙৰ প্রার্থনা। আমি তাক কিদৰে মানি লওঁ)

পদ্মাৱতী ঃ অয্যঙ্গ পঢমং উগ্ঘোসিঅ কো কি ইচ্ছাদিতি অজুওং দাণি বিআৰিদং। জৎএসো ভনাদি তং অনুচিটঠুদ। (প্রাঃ)

(ভাস কে নাটক, ভাগ III পৃঃ ১১৪)

বাসৱদত্তা ঃ (আত্মগতম) কা গই। এসা গচ্ছামি মন্দভাআ। (প্রাঃ)

(মনে মনে, কি উপায় আছে বাৰু? এয়া মন্দভাগিনী নগৈ পাৰো নে)

পদ্মাবতী ঃ ভোদু ভোদু। অজ্জীআ দানিং সংবুত্তা। (প্রাঃ)

(ভাল, হৈছে। এতিয়া আপুনি আত্মীয় হয়।)

(ভাস কে নাটক, ভাগ III পৃঃ ১১৪)

ব্রহ্মচাৰী ঃ (উধর্ব মবলোক্য) স্থিতো মধ্যাহ্ন। দৃটমস্মি পৰিশ্রান্তঃ। অথ কস্মিন প্রদেশে বিশ্রময়িষ্যে। (সং)

(ওপৰলৈ চাই, দুপৰীয়া হ'ল। বৰ ভাগৰ লাগিছে। এতিয়া কোনখন ঠাইত জিৰণি লওঁ)

(ভাস কে নাটক, ভাগ III পৃঃ ১১৬)

পদ্মাবতী ঃ অম্মো পৰপৰুসদং সণং অয্যা। ভোদু সুপৰিপালণীঅ খলু মন্নাসো। (প্রাঃ)

(অ আই। আর্যাই আকৌ পৰ পুৰুষৰ মুখ চাব নোখোজে।

(ভাস কে নাটক, ভাগ III পৃঃ ১১৬)

বাসৱদত্তা ঃ (আত্মগতম), অলিঅং অলিঅং খু এদং। জীৱামি মন্দভাআ (প্রাঃ)

(মনতে, এয়া তেনেই মিছা, তেনেই মিছা মই মন্দভাগিনে জীয়াই আছোঁ।)

যৌগন্ধৰায়ণ ঃ ততস্ততঃ।

(তাৰ পাছত কি হ'ল)

বাসৱদত্তা ঃ (আত্মগতম) জানামি জানামি অযযউত্তস্‌স মই সানুক্কোসত্তনং।। (প্রাঃ)

(মনতে, জানো, মই জানো, মোৰ ওপৰত থকা আর্যপুত্রৰ দয়া মমতা কেনেকুৱা তাক জানো।) (ভাস কে নাটক, ভাগ III পৃঃ ১১৮)

পদ্মাৱতী ঃ দিটঠিয়া ধৰই। মোহং গদো ত্তি সুনিঅ সুন্নং বি অ মে হিঅঅং। (প্রাঃ)

(ভাগ্যে বাচি আছেঙ্গ মুর্চ্ছিত হৈছে বুলি শুনিয়েই মোৰ হিয়া উদং হৈ পৰিছিল।

(ভাস কে নাটক ভাগ III পৃঃ ১২০)

বাসৱদত্তা ঃ (স্বগতম) দিটঠিআ সুনিকখিত্তো দাণিং অয্য উত্তো। (প্রাঃ)

(মনতে, সৌভাগ্য ক্রমে আর্যপুত্রক যোগ্যব্যক্তিৰ হাতত এৰি থোৱা হৈছে।

(ভাস কে নাটক, ভাগ III পৃঃ ১২০)

পদ্মাৱতী ঃ (আত্মগতম) মম হিঅএণ এব্ব সৰহ মন্তিদং। (প্রাঃ)

(মনতে, এইজনীয়ে মোৰ অন্তৰৰ কথা সুধিছে।)

(ভাস কে নাটক, ভাগ III পৃঃ ১২২)

পদ্মাৱতী ঃ অয্যস্স ভইণিআ অযযেন বিনা উক্কাণিঠস্সি দি। (প্রাঃ)

(আর্য নাথাকিলে আর্যৰ ভনীয়েক উৎকণ্ঠিতা হৈ থাকিব আকৌ।)

(ভাস কে নাটক, ভাগ III পৃঃ ১২২)

বাসৱদত্তা ঃ অয্যে। বন্দামি দাব অহং। (প্রাঃ)

(আর্যে, ময়ো সেয়ে প্রণাম জনাইছো।

তাপসী ঃ তুবং পি অইৱেণ ভত্তাৰঁ সমাসাদেহি। (প্রাঃ)

(তুমিও বেগতে পতিজনক পাবা)

বাসৱদত্তা ঃ অনুগ্গহিদম্হি। (প্রাঃ)

(অনুগৃহীত হ'লো)

নাটকখনৰ প্রথম অংকত উপস্থিত হোৱা চৰিত্রসমূহৰ মুখৰ সংলাপসমূহৰ পৰা এটা কথা ক'ব পাৰি যে নাটকখনৰ এই অংকটিত চাৰি প্রকাৰৰ ভাষিক পৰিস্থিতিৰ সৃষ্টি হৈছে —

১। সংস্কৃত - সংস্কৃত

অর্থাৎ সংস্কৃতত কথোপকথন। যৌগন্ধৰায়ণ আৰু কাঞ্চুকীয়ৰ মাজত এই ভাষিক পৰিস্থিতিৰ সৃষ্টি হৈছে। যৌগন্ধৰায়ণে সংস্কৃতত সোধা কথাৰ কাঞ্চুকীয়ে সংস্কৃততে তাৰ উত্তৰ প্রদান কৰিছে। কাঞ্চুকীয়ৰ মুখত সংস্কৃত ভাষাই স্থান পোৱাৰ ক্ষেত্রত ক'ব পাৰি যে কাঞ্চুকীয় নাটকখনৰ উত্তম চৰিত্র নহ'লেও কাঞ্চুকীয়ে সংস্কৃত ভাষা ক'ব পাৰিছিল। যৌগন্ধৰায়ণো এই ক্ষেত্রত ব্যতিক্রম নহয়। উদয়ন মন্ত্রী হিচাপে তেওঁ এক উত্তম চৰিত্র, সেই গতিকে তেওঁৰ মুখত সংস্কৃত ভাষাৰ প্রয়োগ স্বাভাৱিক। নাট্যশাস্ত্রীয় বিধি অনুসৰিও উত্তম চৰিত্রৰ মুখত সংস্কৃত ভাষাৰ সংলাপে শোভা পায়।

২। সংস্কৃত - প্রাকৃত

অর্থাৎ সংস্কৃত আৰু প্রাকৃত দুয়োভাষাতে কথপোকথন। ইয়াত যৌগন্ধৰায়ণে সংস্কৃতত কোৱা বা সোধা প্রশ্নৰ বাসৱদত্তাই প্রাকৃতত যথোচিত উত্তৰ দিছেবা কথোপকথনত ভাগ লৈছে। নাট্যশাস্ত্রীয় বিধি অনুসৰি নাৰী চৰিত্র হিচাপে নাটকখনত বাসৱদত্তাৰ মুখত প্রাকৃত সংলাপৰ প্রয়োগ হৈছে। কিন্তু বাসৱদত্তা এগৰাকী সম্ভ্রান্ত নাৰী, কাৰণ তেওঁ বৎসৰাজ উদয়নৰ পত্নী। ৰাজপৰিয়ালৰ নাৰী হিচাপে তেওঁৰ সংস্কৃত ভাষাৰ সম্পূর্ণ জ্ঞান আছিল। বাসৱদত্তাই বাৰেপতি যৌগন্ধৰায়ণক 'অয্য' (আর্য) বুলি সম্বোধন কৰা দেখা গৈছে। ইয়াৰ পৰা এইটোও ক'ব পাৰি যে যিকোনো উত্তম শ্রেণীৰ পুৰুষ চৰিত্রক নাৰী চৰিত্রই 'আর্য' সম্বোধন কৰে। এই অংকত উপস্থিত ব্রহ্মচাৰী (লাবাণকৰ ছাত্র) চৰিত্রৰ মুখতো সংস্কৃত ভাষাৰ ব্যৱহাৰ হৈছে। ব্রহ্মচাৰীয়ে নিজ বক্তব্য সংস্কৃত ভাষাতে ৰাখিছে।

৩। প্রাকৃত - সংস্কৃত

অর্থাৎ প্রাকৃত আৰু সংস্কৃতৰ কথোপকথন। নাটকখনত আমি দেখিবলৈ পাইছো ৰজা উদয়নৰ পত্নী, বাসৱদত্তাই যৌগন্ধৰায়ণক প্রাকৃতত কথা কৈছে আৰু প্রত্যুত্তোৰত যৌগন্ধৰায়ণে সংস্কৃত ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিছে আৰু তেনেকৈয়ে তেওঁলোকৰ কথোপকথন আগবাঢ়ি গৈছে। মগধৰাজ দর্শনৰ ভগ্নী পদ্মাৱতীৰ ক্ষেত্রতো একেই পৰিস্থিতিৰ সৃষ্টি হৈছে। পদ্মাৱতীয়ে প্রাকৃতত সোধা কথাৰ উত্তৰ যৌগন্ধৰায়ণে সংস্কৃততে দিছে। ইয়াত পদ্মাৱতী ৰজাৰ ভগ্নী হ'লেও নাৰী চৰিত্র হিচাপে তেওঁৰ মুখত প্রাকৃত ভাষাই শোভা দিছে। সংস্কৃতত সোধা কথাৰ যথোচিত উত্তৰ উক্ত দুয়োগৰাকী বিদুষী নাৰী চৰিত্রই প্রাকৃততে দিছে।

৪। প্রাকৃত - প্রাকৃত

অর্থাৎ প্রাকৃত আৰু প্রাকৃতৰ কথোপকথন। আমি দেখিছো যে নাটকখনৰ প্রথম অংকত উপস্থিত নাৰী চৰিত্র - বাসৱদত্তা, পদ্মাৱতী, তাপসী- এই তিনিও চৰিত্রই নিজ কথোপকথন প্রাকৃততে আগবঢ়াই লৈ গৈছে। নাৰী চৰিত্র হিচাপে তিনিওৰে মুখত প্রাকৃত সংলাপে শোভা কৰিছে আৰু ইয়ে নাটকখনৰ এই অংকটোৰ সৌষ্ঠভ বঢ়াইছেহে, ই কোনো অস্বাভাৱিক পৰিস্থিতিৰ সৃষ্টি কৰা নাই। তিনিওৰে প্রাকৃতৰ সংলাপে নাটকখনত ব্যৱহৃত প্রাকৃত ভাষাক এক সুকীয়া মাত্রা প্রদান কৰিছে।

উপসংহাৰ ঃ

নাটকখনৰ এই অংকটোত উপস্থিত প্ৰত্যেকটো চৰিত্ৰই নিজৰ ভাষিক বৈশিষ্ট অক্ষুন্ন ৰাখিছে। ইয়াত দেখা গৈছে যে নাটকখনৰ ভট (ৰক্ষী) কে আদি কৰি প্ৰত্যেকটো চৰিত্ৰই সংস্কৃত আৰু প্ৰাকৃত উভয় ভাষাই জ্ঞাত আছিল। কিন্তু সংস্কৃত আৰু প্ৰাকৃত উভয় ভাষা জ্ঞাত হ'লেও চৰিত্ৰবোৰে নিজৰ নিজৰ স্থিতি অনুযায়ী ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিছে। অৰ্থাৎ ইয়াত উত্তম চৰিত্ৰবোৰে প্ৰয়োজন অনুযায়ী প্ৰাকৃত ভাষা ব্যৱহাৰ কৰিছে, কাৰণ দেখা গৈছে যে যৌগন্ধৰায়ণৰ দৰে উত্তম চৰিত্ৰই নাটকৰ নিম্ন বা অধম চৰিত্ৰৰ সতে ভাৰ বা বাৰ্ত্তা বিনিময়ৰ বেলিকা প্ৰাকৃত ভাষা প্ৰয়োগ কৰিছে। স্বাভাৱিকতে নিম্নচৰিত্ৰৰ মুখত প্ৰাকৃত ভাষাই স্থান পাইছে। কিন্তু নাটকীয় পৰিক্ৰমা আগবাঢ়ি যাওঁতে কত উত্তম চৰিত্ৰই অধম বা নিম্ন প্ৰাকৃত ভাষাধাৰী চৰিত্ৰক উপহাস বা অৱমাননা কৰা পৰিলক্ষিত হোৱা নাই। প্ৰত্যেকটো চৰিত্ৰই নিজৰ পৰিবেশত নিজস্ব ভাষিক বৈচিত্ৰ্যৰে উদ্ভাসিত হৈ উঠা দেখিবলৈ পোৱা গৈছে। ইয়াৰ পৰা আমি সমসাময়িক ভাষিক পৰিস্থিতিৰ বিষিয়েও উমান পাব পাৰো। সেই সময়ত সংস্কৃত আৰু লৌকিক সংস্কৃত অৰ্থাৎ প্ৰাকৃত উভয়ৰে ব্যৱহাৰ আছিল। সংস্কৃত ভাষীসকলেও সমসাময়িক ব্যৱহাৰিক সমাজ জীৱনত মিলি চলিবৰ বাবে প্ৰাকৃত ভাষা আয়ত্ব কৰিছিল। ইপিনে সাধাৰণ শ্ৰেণীৰ নাগৰিকসকলৰ প্ৰত্যেকেই সংস্কাৰিত সংস্কৃত ভাষা জনাটো হয়তো সম্ভৱ নাছিল বা বহুক্ষেত্ৰত তেওঁলোকৰ প্ৰয়োজনো নাছিল। তেওঁলোকৰ দৈনন্দিন জীৱনটো সুচাৰুৰূপে চলাই নিবলৈ প্ৰাকৃত ভাষাটোৱে যথেষ্ট আছিল। ইয়াৰ পৰা এটা কথা ক'ব পাৰি যে প্ৰত্যেকে যদি নিজৰ ভাষিক পৰিবেশক লৈ সচেষ্ট হৈ থাকে তেন্তে বহু ভাষা বিপন্ন হোৱাৰ পৰা ৰক্ষা পৰিলেহেঁতেন। দেখা যায় যে বহু প্ৰান্তীয় ভাষা, লোকভাষা ব্যৱহাৰ বৰ্জিত হোৱাৰ বাবেই ক্ৰমে ক্ৰমে হেৰাই যোৱাৰ উপক্ৰম হয় আৰু সময়ত গৈ লুপ্ত প্ৰায় হৈ যায়।

প্ৰত্যেকে যদি নিজৰ মুখৰ ভাষাকলৈ সষ্ঠম হৈ থাকে, যিকোনো পৰিবেশতে নিজৰ ভাষাৰে নিজক উপস্থাপন কৰিব বিচাৰে তেন্তে বহু হেৰাই যোৱাৰ পৰা ৰক্ষা পৰিব, লগতে স্বকীয়তাৰে নিজৰ স্থিতি প্ৰতিপন্ন কৰিবলৈ সক্ষম হ'ব। ভাসৰ দৰে নাট্যকাৰসকলে যদি তেওঁলোকৰ নাটকত প্ৰাকৃত ভাষা ব্যৱহাৰ নকৰিলেহেঁতেন, তেন্তে প্ৰাকৃত ভাষাৰ যি বিচিত্ৰ ৰূপ সেয়া আজিৰ তাৰিখত আমি নাপালোহেঁতেন। কাৰণ ভাষা ব্যৱহাৰৰ মাজেৰেহে জীয়াই থাকে, ব্যৱহাৰত ভাষাৰ আয়ু বাঢ়ে। ❑

সহায়ক গ্ৰন্থপঞ্জী ঃ

মূখ্য সমল

১। উপাধ্যায়, চন্দ্ৰশেখৰ (সম্পা.) ঃ ভাস কে নাটক (ভাগ III), নাগ প্ৰাব্লিৰ্ছাচ, দিল্লী, প্ৰথম সংস্কৰণ, ২০০১। গৌণ সমল

১। গোস্বামী, সত্যেন্দ্ৰনাৰায় ঃ প্ৰাকৃত সাহিত্য, বানী প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, তৃতীয় প্ৰকাশ, ১৯৯৩।

২। ঠাকুৰ, নগেন ঃ পালি প্ৰাকৃত অপভ্ৰংশ ভাষা আৰু সাহিত্য, কে. এম. পাৱলিছিং, গুৱাহাটী ০১, সংশোধিত আৰু পৰিবৰ্ধিত সংস্কৰণ, ১৯৯৭। ঃ প্ৰাকৃত সাহিত্য চয়ন, জ্যোতি প্ৰকাশ, গুৱাহাটী, তৃতীয় সংস্কৰণ, ২০০১। ঃ প্ৰাকৃত সাহিত্যৰ অধ্যয়ন, জ্যোতি প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, তৃতীয় প্ৰকাশ, ২০০৭। ঃ পৃথিৱীৰ বিভিন্ন ভাষা, জ্যোতি প্ৰকাশন, গুৱাহাটী, তৃতীয় প্ৰকাশ, আগষ্ট ১৯৯৭।

৩। বৈশ্য, ভূবনেশ্বৰী ঃ প্ৰাকৃত ভাষা সাহিত্য পৰিচয়, গুৱাহাটী ৮, চতুৰ্থ প্ৰকাশ, ডিচেম্বৰ ১৯৯৫।

৪। শৰ্মা, থানেশ্বৰ ঃ ভাসৰ নাটক সমগ্ৰ, বানী মন্দিৰ, গুৱাহাটী, প্ৰথম প্ৰকাশ, ২০০৫।

সহকাৰী অধ্যাপিকা

অসমীয়া বিভাগ

বড়োলেণ্ড বিশ্ববিদ্যালয়, কোকৰাঝাৰ, অসম

ফোন ঃ ৯৮৬৪১৯৭৪৩১

কবিতা

অনুৰাগ আৰু এটা ছাতি

✍ ৰাজুমণি শইকীয়া

এটা ছাতি লৈ ৰৈ আছিলোঁ।
অনুৰাগ আহিব বুলি।
তাৰিখৰ পিছত তাৰিখ,
দিনৰ পিছত দিনৰ হিচাপ।
গণিতৰ পিছত গণিত।
আকাশ ক'লা হ'ল,
মেঘৰ লগত মেঘৰ সংঘর্ষ হ'ল,
বৰষুণ হৈ নামি আহিল সম্ভাৱনাৰ দিন।
অনুৰাগ আহিব বুলিয়েই মই ৰৈ আছিলোঁ নৈৰ পাৰত;
হাতত মেলি লৈ এটা ছাতি, বৰষুণৰ ৰাতি।
ভবামতেই আহিল এটা দিন।
আহিল প্রচণ্ড এজাক বৰষুণ। মই ৰ'লো ছাতি মেলি।
বাঢ়ি গ'ল বৰষুণৰ হাওৰণি।
মাটি বাগৰি অহা পানীয়ে বুৰাই পেলালে মোৰ ভৰিৰ গাঁঠি।
ক্রমশঃ পানী বাঢ়ি এআঁঠু নৈ হ'ল। মোৰ হাতত তেতিয়াও মেলা ছাতি।
ৰৈ আছিলোঁ অনুৰাগ আহিব বুলি।
বৰষুণ গুচি গ'ল।
গুচি গ'ল ভৰিৰ তলৰ পানী।
ধুমুহাৰ গতিৰে এজাক বতাহ আহিল,
সযতনে সামৰি থ'লোঁ ছাতিটো।
অনুৰাগ আহিব বুলি।
ৰাতিটো থাকিলোঁ তেনেদৰে।
একেঠাইতে একেদৰে।
বুকুত অপেক্ষা আৰু প্রাঞ্জল আৰতি।
পুৱালৈকে নাহিল অনুৰাগ,
বেলি আহিল।
লাহে লাহে গা-টঙাই পুৰঠ হ'ল।
নিজে জ্বলিল নিজৰ জ্ঞাতসাৰে।
চিনিব নোৱাৰা হ'ল বেলি মানে কি
ৰ'দ মানে কি!

ৰ'দে হেৰুৱালে ৰ'দৰ সৰল অস্তিত্ব,
একোচমকা সৰু ডাৱৰে নিৰ্লজ্জ ভাৱে ঢাকি থ'ব পৰা হ'ল উত্তাপ,
তাচ্ছিল্য কৰা হ'ল শাওণৰ দুপৰীয়াৰ সৌন্দৰ্য।
তিৰস্কৃত হ'ল বেলিৰ উত্তাপ,
ৰ'দৰ সংযম। জুই হৈ পুৰি নিলে সহ্যশীল মানুহৰ সম্ভ্রান্ত অনুভৱ।
বৰষুণত ভিজা মাটিবোৰ শুকাই ছিৰাছিৰ হ'ল।
শীতল গছবোৰ পুৰি হ'ল ছাই হেন। অনুৰাগ নাহে এই তাপত। পুৰি ছাই হ'ল।
মইয়ো হেৰাই গ'লোঁ। হেৰাল মোৰ পুৰঠ চিনাকি।
ছাতিটো এতিয়াও ৰাখিছোঁ সযতনে।
এইবাৰ মোৰ বাবে।
কাৰণ, মই মোক ভাল পাওঁ।
ভাল পাওঁ বাবেই
মই মোক বিচাৰি ফুৰোঁ নৈৰ পাৰে পাৰে।
নৈয়ে মোক মাতে। নৈয়ে মোক সাজে-ভাঙে।
ছাতিটো জপাই লৈ ৰৈ আছোঁ এই শাওণৰ দুপৰীয়া। কোনো ৰ'দৰ উত্তাপে মোক
এতিয়া আৰু পুৰিব নোৱাৰে।
নালাগে কোনো অপেক্ষাৰ আনন্দ।
এতিয়া ভাল লাগে বৰষুণ।
মোক তিতিবলে দিয়া দুপৰীয়াৰ দোপাল-পিটা শাওণীয়া পানীত।
এয়াই মোৰ অনুৰাগ, চেতনাৰ
অম্লান সৰল সপোন।
ৰ'দ এতিয়া মোৰ চেতনাৰ বাহিৰত।
ৰ'দে দেহ ক'লা কৰে শাওণীয়া পথাৰত।
এতিয়া মোক লাগে বৰষুণ
দোপাল-পিটা কিম্বা কিন্‌কিনীয়া।
আহক আহিলে বান
মোক দি যাব সাৰুৱা পলস
শইচৰ বাবে,
দি যাব আৰু এক সুবাস, বিমল আৰু অনিৰ্বাণ।
মই ছাতিটো মেৰি তৰি দিম
একেলগে গুচি যাম বহু দূৰ মই, শাওণ, বৰষুণ,
ছাতি আৰু আন এক অনুৰাগ।
ভাগৰি নপৰোঁ কাহানিও। ভাগি নপৰোঁ।
বকুল শেৱালি চিঙে জানো কোনোবাই; সৰিলেহে বুটলে। ❑

জাগী, মৰিগাওঁ (অসম)-৭৮২৪১১
মোবাইল ঃ ৮৬৩৮৩৯৫০০৬

लेखकों से निवेदन

- द्विभाषी राष्ट्रसेवक में प्रकाशन हेतु पत्रिका की प्रकृति के अनुरूप भाषा, साहित्य, समाज, कला व संस्कृति विषयक लेख आमंत्रित हैं।
- अनूदित रचनाओं के संदर्भ में मूल लेखक की अनुमति/स्वीकृति अनिवार्य है।
- लेखक अपनी रचनाएँ केंद्रीय हिंदी निदेशालय द्वारा स्वीकृत मानक हिंदी यूनिकोड में 13 प्वाइंट में टंकित कर पत्रिका के ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com पर अथवा स्पष्ट अक्षरों में लिखकर समिति कार्यालय के पते (मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-781032, असम) पर भेजें।
- अस्वीकृत रचनाएँ लौटाई नहीं जाएँगी। अत: भेजी गई रचना की प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- लेखक अपनी रचना के साथ अपना नाम, पदनाम, मोबाइल नं., ई-मेल, पूरा पता सहित एक पासपोर्ट साइज फोटो अवश्य भेजें।
- शोधपत्र की न्यूनतम शब्द-सीमा 2000 और अधिकतम 4000 होनी चाहिए और सार 150 से 200 शब्दों के भीतर होना चाहिए।
- असमीया भाषा में लिखे गए लेख को पेजमेकर फारमेट में गीतांजलि फंट, 12 प्वांइट में टाइप कराकर भेज सकते हैं।
- शोधपत्र के लेखन में एमएलए शैली का पालन करना चाहिए।
- शोधपत्र में क्रमश: शीर्षक, सार, प्रस्तावना, उद्देश्य, संसाधन/सामग्री, प्रविधि/पद्धति, क्षेत्र, मूल विषयवस्तु का विश्लेषण, परिणाम/उपलब्धियाँ, निष्कर्ष और उद्धृत कार्य शामिल हो सकते हैं।
- शोधपत्र की मौलिकता हेतु रचना के साथ घोषणा-पत्र संलग्न किया जाना चाहिए।
- लेखक अपनी तथ्यात्मक सटिकता के लिए पूरी तरह जिम्मेदार हैं।

द्विभाषी राष्ट्रसेवक का सदस्यता प्र-पत्र

यहाँ से काटिए

नाम : .....

पदनाम : .....

पूरा पता : .....

: .....

ई-मेल : ..... मोबाइल : .....

RTGS का विवरण : .....

सदस्यता शुल्क

व्यक्तिगत		*संस्थागत*	
प्रति अंक	: रु. 50/-	प्रति अंक	: रु. 100/-
वार्षिक	: रु. 550/-	वार्षिक	: रु. 1,000/-
दो वर्षों के लिए	: रु. 1,000/-	दो वर्षों के लिए	: रु. 2,000/-
पाँच वर्षों के लिए	: रु. 2,500/-	पाँच वर्षों के लिए	: रु. 4,500/-
आजीवन सदस्य	: रु. 10,000/-		

निर्धारित शुल्क मनीऑडर/डी.डी. के द्वारा असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के नाम से समिति कार्यालय के पते पर भेजा जा सकता है। ऑनलाइन शुल्क निम्न विवरण के अनुसार भेजें :-

Name of Beneficiary : Asom Rastrabhasha Prachar Samiti
A/c No. : 0853010182614
Name of Bank & Branch : Punjab National Bank, G.S. Road
IFS Code : PUNB0085320

अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें -

डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया, मंत्री, असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, सेवा मंदिर पथ, रूपनगर, डाक : इंद्रपुर, जिला : कामरूप महानगर, गुवाहाटी-781032 (असम), मो. 9101541380, ई-मेल : rastrasewak51@gmail.com

घोषणा-पत्र

1.	प्रकाशन का स्थान	: असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-32
2.	प्रकाशन की अवधि	: मासिक
3.	प्रकाशक का नाम	: डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
	क्या भारतीय हैं ?	: हाँ
	पता	: असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-32
4.	मुद्रक का नाम	: डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
	क्या भारतीय हैं ?	: हाँ
	पता	: असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-32
5.	प्रधान संपादक	: डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया
	क्या भारतीय हैं ?	: हाँ
	पता	: असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, रूपनगर, गुवाहाटी-32
6.	स्वामित्व	: असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी की ओर से समिति के मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया

मैं डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया घोषित करता हूं कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सही हैं।

अप्रैल, 2022
गुवाहाटी-32

(डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया)
प्रकाशक के हस्ताक्षर

गीत

बीरेंद्र कुमार भट्टाचार्य

(1924–1997)

आमि बहुवाम जनतार दरबार,
आमि बहुवाम जनतार सरकार।
पुरनि दैन्य जुइरे पुरिम नतुन साहस ढालि।
शत जाति मिलि गुठिम लगेरे महाजीवनर छबि।
आमि स्वाधीन युगर बिप्लवी बीरर दल!
मुखत आमार जीवनर वाणी, चकुत सृष्टिर ढल।
हातर मुठित ध्वंस–गढ़नर आशार बिशाल बल!
तेल–कयला–चाह–बनुवाइ बढ़ाब जीवनर मान।
पाहारीये ल'ब निजे जीयाइ थकार सुविधार महादान।
कृषके ल'ब निजे माटिर स्वत्व, तिरोताई ल'ब निजे मुक्ति!
आमि रचिम जनतार शक्ति।
आमि भूमित पातिम आजि महा साम्यर मेला!
नतुन असम, सोनर असम, जय आई असम बोला।

â¿ØÙ, âÂæÎ·¤, ×ãàßÚ Ù¥æ»

POSTAL REGISTRATION NO. GH/127/2019-21 ❖ Date of publication : 30th April, 2022 ❖ RNI No. ASSBIL/2009/31008

"

एक भाषा के रूप में हिंदी न सिर्फ भारत की पहचान है, बल्कि यह हमारे जीवन मूल्यों, संस्कृति एवं संस्कारों की सच्ची संवाहक, संप्रेषक और पि रचायक भी है। बहुत सरल, सहज और सुगम भाषा होने के साथ हिंदी विश्व की संभवतः सबसे वैज्ञानिक भाषा है, जिसे दुनिया भर में समझने, बोलने और चाहने वाले लोग बहुत बड़ी संख्या में मौजूद हैं।

"

असम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी की ओर से मंत्री डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया द्वारा ग्राफिक्स प्रेस, हेदायतपुर, गुवाहाटी-3 में मुद्रित, प्रकाशित एवं प्रसारित। दूरभाष : (0361) 2463394, 2462811, फैक्स : 0361-2463394
संपादक : डॉ. क्षीरदा कुमार शइकीया e-mail : rastrasewak51@gmail.com कार्यकारी संपादक : रामनाथ प्रसाद